लेखक

अगस्त १६२६ ई० में जलालपुर-जमानियाँ (उत्तर प्रदेश) के एक भूत-पूर्व जमीदार परिवारमें जन्म। शिक्षा हिन्दू कालेज जमानियाँ, उदयप्रताप कालेज तथा हिन्दू विश्वविद्यालय काशीमें हुई। १६५३ में एम० ए०। १६५४ में भारत सरकारकी ह्यूमैनिटीज़ स्कालरशिप मिली। कुछ महीनों पुराने हस्तलेखोंकी खोजमें राजस्थानके भाण्डारोंका चक्कर लगाते रहे। १६५७ में पी-एच० डी० की उपाधि मिली। इतिहास, उपन्यास और अखबारोंके पढ़नेका बेहद शौक है। सम्प्रति हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, वाराणसीमें प्राध्यापक हैं।

ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला—हिन्दी ग्रन्थाङ्क—८५

कर्मनाशा की हार

शिवप्रसाद सिंह
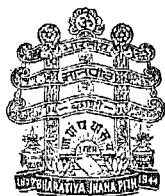
भारतीय ज्ञानपीठ • काशी

ज्ञानपीठ-लोकोदय-ग्रन्थमाला-सम्पादक और नियामक
श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन, एम० ए०

प्रकाशक
मंत्री, भारतीय ज्ञानपीठ,
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

प्रथम संस्करण
१९५८
~~मूल्य तीन रुपये~~ 4-00

मुद्रक
बाबूलाल जैन फागुल्ल
सन्मति मुद्रणालय,
दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी

दिवंगत हृदयनारायणकी स्मृतिमें

• • विकल्प

आपके हाथों अपनी कहानियोंका यह दूसरा संग्रह सौंपते हुए मेरे मनमें उल्लास है, सन्तोष और प्रसन्नता भी; पर एक छोटेसे विकल्पके साथ। चूँकि यह मनुष्यका स्वभाव है कि वह अपने पड़ोसीके संकल्पोंके बारेमें कुछ जाननेके लिए उतना उत्साहित नहीं होता जितना उसके विकल्पके प्रति, इसलिए मैं इन कहानियोंके साथ ही इस विकल्पको भी आपके ही हाथों सौंप रहा हूँ।

इधर हिन्दीमें बहुतसे कहानी-संग्रह छपे हैं। इन संग्रहोंमें कहानीकारोंने खुद अपने, कभी प्रकाशकके मुखसे, कभी आलोचकोंकी भूमिकाके रूपमें कुछ दावे भी रखे हैं शैलीकी नवीनताके विषयमें और नई भाव-भूमियोंके सृजन के बारेमें। दावे हमेशा इस पूर्वग्रहसे प्रेरित होते हैं कि हमारी चीज़को लोग उसी रूपमें नहीं देखेंगे जैसा हम उनके सामने रखते हैं। पर संक्रमण-कालके साहित्यमें जहाँ पुराना ध्वस्त हो और नया अजन्मा, परिपाटी पंगु हो और प्रयोग अपरिचित वहाँ साहित्यकारको विवश होकर आत्म-विज्ञापक का बाना धारण करना ही पड़ता है। पर एक ओर जब यह विज्ञापन फैशन बनने लगे और दूसरी ओर स्वयंभू आलोचक गण परेशान नज़र आयें तब एक विकल्प की स्थिति पैदा हो जाती है। कुछ आलोचक हैरान हैं कि कहानीकारोंको भी नई कविताकी हवा लग रही है। वे भी प्रयोगोंकी बात करने लगे हैं। पता नहीं इस 'बाड़ेबन्दीका' क्या मतलब है। केवल गूँगी जातिका मुखर होना ही अखर रहा है या कहीं यह खतरा तो नहीं है कि इससे वे पोली दीवालें ढह जायेंगी जो साहित्यको नाना-खित्तोंमें बाँटकर मिथ्या गुरुडमको शरण देती हैं। ग्रामकथा और नगरकथाका विवाद भी इसी स्वार्थनीतिका सूचक है। यह नया 'बाड़ेबन्दीवाद' साहित्यके समग्ररूपके आकलनमें बाधक हो रहा है। परिवर्तन सब जगह एकसे हुए हैं, नये भावोंके लिए उपयुक्त अभिव्यक्ति-माध्यमकी समस्या सर्वत्र एक जैसी ही

है। साहित्यकी जाँच खित्तेवार कल्पित मानदण्डोंसे नहीं बल्कि रचनाके प्रति लेखककी ईमानदारी, उसके सौन्दर्य-बोध और मानवीय संवेदनाको अभिव्यक्त करनेकी उनकी क्षमताके आधारपर होनी चाहिए।

अपनी कहानियोंके विषयमें मेरा कोई अलगसे दावा नहीं है। जो कुछ है इन कहानियोंमें ही है। एक आस्थाका भाव जरूर है मनमें अपने प्रयत्नके प्रति। मनुष्य और उसकी जिन्दगीके प्रति मुझे मोह है। जो अपने अस्तित्वको उबारनेके लिए विविध क्षेत्रोंमें विरोधी शक्तियोंसे जूझ रहा है; अंधविश्वास, उपेक्षा, विवशता, प्रताड़ना, अतृप्ति, शोषण, राजनीतिक भ्रष्टाचार और क्षुद्र स्वार्थान्धताके नीचे पिसता हुआ भी जो अपने सामाजिक और वैयक्तिक हक़के लिए लड़ता है, हँसता है, रोता है, बार-बार गिरकर भी जो अपने लक्ष्यसे मुँह नहीं मोड़ता वह मनुष्य तमाम शारीरिक कमजोरियों और मानसिक दुर्बलताओंके बावजूद महान् है। इसी मनुष्यताके कतिपय अंशोंका चित्रण इन कहानियोंका उद्देश्य रहा है। इस चित्रणमें समग्रताका दावा व्यर्थ है क्योंकि कहानियाँ अनन्त समय-व्यापी जीवनके कुछ क्षणोंकी ही अभिव्यक्ति हैं। ये क्षण यदि आपको उस पूर्णताकी एक झलक भी दे सके, तो मुझे अपने प्रयत्न से परितोष मिलेगा।

एक मित्र आलोचकने मुझे सलाह दी है कि मैं अपनी चुप्पी तोड़कर आर-पारकी माला जैसी प्यारी कहानियाँ लिखूँ। सालाना जलसोंमें सदारत करने वाले बड़े लोगोंसे जनताके दैनिक कार्योंके प्रति दिलचस्पी रखनेकी प्रार्थना करना शायद उनके साथ ज्यादती होगी। यह इन कहानियोंका अभाग्य है कि इन्हें किसीके अनावश्यक प्यार-संरक्षणकी अपेक्षा नहीं है शायद यह इनके हक़में अच्छा भी हो, क्योंकि अबोध शिशुओंकी तरह बुजुर्गोंकी उँगली पकड़े ये कबतक चल पायेंगी। अस्तु!

काशी
२१ नवम्बर १९५८

—शिवप्रसाद सिंह

अनुक्रम

कर्मनाशा की हार

काले साँप का काटा आदमी बच सकता है, हालाहल जहर पीने वाले की मौत रुक सकती है, किन्तु जिस पौधेको एकबार कर्मनाशाका पानी छू ले, वह फिर हरा नहीं हो सकता। कर्मनाशाके बारेमें किनारेके लोगों में एक और विश्वास प्रचलित था कि यदि एक बार नदी बढ़ आये तो बिना मानुसकी बलि लिये लौटती नहीं। हालाँकि थोड़ी ऊँचाई पर बसे हुए नईडीह वालोंको इसका कोई खौफ न था; इसी से वे बाढ़ के दिनों में, गेरूकी तरह फैले हुए अपार जल को देखकर खुशियाँ मनाते, दो-चार दिनकी यह बाढ़ उनके लिए तब्दीली बनकर आती, मुखिया जीके द्वारपर लोग-बाग इकट्ठे होते और कजली-सावनीकी ताल पर ढोलकें ठनकने लगतीं। गाँवके दुधमुहें तक 'ई बाढ़ी नदिया जिया लेके माने' का गीत गाते क्योंकि बाढ़ उनके किसी आदमीका जिया नहीं लेती थी। किन्तु पिछले साल अचानक जब नदीका पानी समुद्रके ज्वारकी तरह उमड़ता हुआ, नईडीहसे जा टकराया, तो ढोलकें बह चलीं, गीतकी कड़ियाँ मुरझा कर होठोंमें पपड़ीकी तरह छा गईं, सोखाने जानके बदले जान देकर पूजा की, पाँच बकरोंकी दौरी भेंट हुई, किन्तु बढ़ी नदी का हौसला कम न हुआ। एक अन्धी लड़की, एक अपाहिज बुढ़िया बाढ़ की भेंट रहीं। नईडीह वाले कर्मनाशाके इस उग्र रूपसे काँप उठे, बूढ़ी औरतोंने कुछ सुराग मिलाया। पूजा-पाठ कराकर लोगोंने पाप-शान्ति की।

एक बाढ़ बीती, बरस बीता। पिछले घाव सूखे न थे कि भादोंके दिनोंमें फिर पानी उमड़ा। बादलोंकी छाँवमें सोया गाँव, भोरकी किरण

देखकर उठा तो सारा सिवान रक्तकी तरह लाल पानीसे घिरा था। नई-डीहके वातावरणमें होलदिली छा गई। गाँव ऊँचे अरार पर बसा था, जिस पर नदीकी धारा अनवरत टक्कर मार रही थी, बड़े-बड़े पेड़ जड़-मूलके साथ उलटकर नदीके पेटमें समा रहे थे, यह बाढ़ न थी, प्रलयका सन्देश था, नईडीहके लोग चूहेदानीमें फँसे चूहेकी तरह भयसे दौड़-धूप कर रहे थे, सबके चेहरे पर मुर्दनी छा गई थी।

'कल दीनापुरमें कड़ाह चढ़ा था पाँड़े जी' ईसुर भगत हकलाते हुए बोला। कुएँकी जगतसे बाल्टीका पानी लिये जगेसर पाँड़े उतर रहे थे। घबड़ाकर बाल्टी सहित ऊपरसे कूद पड़े।

'क्या कह रहे थे भगत, कड़ाह चढ़ा था, क्या कहा सोखाने?' चौराहे पर छोटीसी भीड़ इकट्ठी हो गई। भगत अपने शब्दोंको चुभलाते हुए बोले: 'काशीनाथकी सरन, भाई लोगों, सोखाने कहा कि इतना पानी गिरेगा कि तीन घड़े भर जायेंगे, आदमी-मवेशीकी छय होगी, चारों ओर हाहाकार मच जायेगा, परलय होगी।'

'परलय न होगी, तब क्या बरक्कत होगी? हे भगवान, जिस गाँवमें ऐसा पाप करम होगा वह बहेगा नहीं, तब क्या बचेगा?' माथेके लुग्गेको ठीक करती हुई धनेसरा चाची बोलीं: 'मैं तो कहूँ कि फुलमतिया ऐसी चुप काहे है। राम रे राम, कुतिया ने पाप किया, गाँवके सिर बीता। उसकी माई कैसी सतवन्ती बनती थी। आग लाने गई तो घरमें जाने नहीं दिया, मैं तो तभी छनगी कि हो न हो दालमें कुछ काला है। आग लगे ऐसी कोखमें। तीन दिनकी बिटिया और पेटमें ऐसी घनघोर दाढ़ी!'

'कुछ साफ भी कहोगी भौजी' बीचमें जगेसर पाँड़े बोले: 'क्या हुआ आखिर...?'

'हुआ क्या, फुलमतिया राँड़ मेमना लेके बैठी है। विधवा लड़की बेटा बियाकर सुहागिन बनी है।'

'ऐं कब हुआ...'सबकी आँखोंमें उत्सुकताके फफोले उभर आये। आगत भयसे सबकी साँसें टँगी रह गईं। तभी मिर्चेकी तरह तिन्नी आवाजमें चाची बोलीं—'कोई आजकी बात है? तीन दिनसे सोरीमें बैठी है डाइन। पापको छातीसे चिपकाये है, यह भी न हुआ कि गर्दन मरोड़ कर गड़हे-गुच्चीमें डाल दे।'

लोगोंको परलयकी सूचना देकर, हवामें उड़ते हुए आँचलको बरजोरी बसमें करती चाची दूसरे चौगड्डेकी ओर बढ़ चलीं, गाँवका सारा आतंक, भय, पाप उनके पीछे कुत्तेकी तरह दुम दबाये चले जा रहे थे। सबकी आँखोंमें नई ढाहका भविष्य था, रक्तकी तरह लाल पानी में चूहे की तरह ऊभ-चूभ करते हुए लोग चिल्ला रहे थे, मौत का ऐसा भयंकर स्वप्न भी शायद ही किसीने देखा था।

२

भैरो पाँड़े बैसाखीके सहारे अपनी बखरीके दरवाजेमें खड़े बाढ़के पानीका जोर देख रहे थे, अपार जलमें बहते हुए साँप-बिच्छू चले जा रहे थे। मरे हुए जानवरकी पीठ पर बैठा कौवा लहरके धक्केसे बिछल जाता, भींगे चूहे पानीसे बाहर निकलते तो चील झपट पड़ते। विचित्र दृश्य है—पाँड़े न जाने क्यों बुदबुदाये। फिर मिट्टीकी बनी पुरानी बखरी की ओर देखा। पाँड़ेके दादा देस-दिहातके नामी गिरामी पंडित थे, उनका ऐसा अकबाल था कि कोई किसीको कभी सतानेकी हिम्मत नहीं करता था। उनकी बनवाई है यह बखरी। भागकी लेख कौन टारे। दो पुश्त के अन्दर ही सभी कुछ खो गया, मुट्ठी में बन्द जुगनू हाथ के बाहर निकल गया और किसीने जाना भी नहीं। आजसे सोलह साल पहले माँ-बाप एक नन्हा लड़का हाथमें सौंपकर चले गये, पैरसे पंगु भैरो पाँड़े अपने दो बरसके छोटे भाईको कन्धेसे चिपकाये असहाय, निरवलम्ब खड़े रह गये—धन के नामपर बापका कर्ज मिला, काम-धामके लिए दुधमुँहे भाईकी देख-रेख,

रहनेके लिए बखरी जिसे पिछली बाढ़के धक्कोंने एकदम जर्जर कर दिया है।

'अब यह भी न बचेगी'—पाँड़ेके मुँहसे भवितव्य फूट रहा था जिसकी भयंकरता पर उन्होंने जरा भी ख्याल करना जरूरी नहीं समझा। दरारोंसे भरी दीवालें उनके खुरदरे हाथोंके स्पर्शसे पिघल गईं, वर्षाका पानी पसीजकर हाथोंमें आँसूकी तरह चिपक गया।

सनसनाती हवा गाँवके इस छोरसे उस छोर तक चक्कर लगा रही थी। विधवा फुलमतियाको बेटा हुआ है, बेटा—कुतियाके पापसे गाँव तबाह हो रहा है, राम राम''''''ऐसा पाप''''''भैरो पाँड़ेके कानोंमें आवाजके स्पर्शसे ही भयंकर पीड़ा पैदा हो गई। बैसाखी उनके शरीरके भारको सँभाल न सकी और वे धमसे चौकठ पर बैठ गये। बाजूके धक्के से कुहनी छिल गई, चिनचिनाती कुहनीका दर्द उनके रोयें-रोयेंमें बिंध रहा था, और पाँड़े इस पीड़ाको होठोंके बीच दबानेका प्रयत्न कर रहे थे!'

'सब कुछ गया'—वे बुदबुदाये। कर्मनाशाकी बाढ़ उनकी इस जर्जर बखरी को हड़पने नहीं, उनके पितामह की उस अमूल्य प्रतिष्ठाको हड़पने आई है जिसे अपनी इस विपन्न अवस्थामें भी पाँड़ेने धरती पर नहीं रखा। दुलारसे पली वह प्रतिष्ठा सदा उनके कन्धे पर चढ़ी रही। 'मैं जानता था कि यह छोकरा इस खानदानका नाश करने आया है'—पाँड़े की आँखोंमें उनके छोटे भाईकी तस्वीर नाच उठी। अठारह वर्षका छरहरा पानीदार कुलदीप जिसकी आँखोंमें भैरोको माँ की छाया तैरती नजर आती, उसके काले काकुलको देखकर मुखियाजी कहते कि इस पर भैरो पाँड़ेकी दादाकी लौछार पड़ी है। पाँड़े हो-हो कर हँस पड़ते। 'जा रे कुलदीप, बरामदेमें बैठ कर पढ़' भैरो पाँड़े मनमें बुदबुदाते—तेरे आँखमें सौ कुण्ड बालू, हरामी कहीं का, लड़के पर नजर गड़ाता है, कुछ भी हुआ इसे तो भगवान कसम तेरा गला घोंट दूँगा, बड़ा आया

मुखिया जी' फिर जरा बढ़के बोलते—'क्या लौलार पड़ेगी मुखिया जी, दादाके पास तो पाँच पछाहीं गायें थीं, एकसे एक, दो थान दूह लें तो पँचसेरी बाल्टी भर जाती थी। यहाँ तो इस लौंडेको दूध पचता ही नहीं। फिर साल-बारह महीने हमेशा मिलता भी कहाँ है हम गरीबों को ?'

'अब वह पुराने जमानेकी बात कहाँ रही पांडेजी' मुखिया कहता और अपने संकेतोंसे शब्दोंमें मिर्चे की तिताई भर कर चला जाता। काले काले काकुलों वाला नवजवान कुलदीप उसे फूटी आँखों नहीं सुहाता, किन्तु भैरों पाँडेके डरसे वह कुछ कह न पाता।

भैरो पाँड़े दिन भर बरामदेमें बैठकर रुईसे बिनौले निकालते, तूँमते, सूत तैयार करते और अपनी तकली नचा-नचाकर जनेऊ बनाते, जजमानी चलाते, पत्रा देख देते, सत्यनारायणकी कथा बाँच देते, और इससे जो कुछ मिलता कुलदीपकी पढ़ाई और उसके कपड़े-लत्ते आदिमें खर्च हो जाता।

यह सब कुछ मरमर कर किया था इसी दिन को—पाड़ेकी आँखों में प्यास छा गई, लड़के ने उन्हें किसी औरका नहीं रखा। आज यहाँ आफत मची है, अपने पता नहीं कहाँ भाग कर छिपा है।

'राम जाने कैसे हो' सूखी आँखों से दो बूँदें गिर पड़ीं, 'अपने से तो कौर भी नहीं उठा पाता था, भूखा बैठा होगा कहीं, बैठे-मरे हम क्या करें।' पाँड़ेने बैसाखी उठाई। बगलकी चारपाई तक गये और धम्मसे बैठ गये। दोनों हाथोंमें मुँह छिपा लिया और चुप लेटे रहे।

३

पूरबी आकाश पर सूरज दो लट्ठे ऊपर चढ़ आया था। काले-काले बादलोंकी दौड़-धूप जारी थी, कभी-कभी हल्की हवाके साथ बूँदें बिखर जातीं। दूर किनारों पर बाढ़के पानीकी टकराहट हवामें गूँज उठती। भैरों पाँड़े उसी तरह चारपाई पर लेटे आँगनकी ओर देख रहे थे। बीचों

बीच आँगनके तुलसी-चौरा था जो बरसातके पानीसे कट कर खुरदरा हो गया था। पुराने पौधेके नीचे कई मासूम मरकती पत्तियों वाले छोटे-छोटे पौधे लहराने लगे थे। वर्षाकी बूँदें पुराने पौधेकी सख्त पत्तियों पर टकरा कर बिखर जातीं, टूटी हुई बूँदोंकी फुहार धीरेसे मासूम पौधों पर फिसल जाती, कितने आनन्द-मग्न थे वे मासूम पौधे। पाँड़ेकी आँखोंके सामने कातिककी वह शाम भी नाच उठी। दो बरस पहलेकी बात होगी। शामके समय जब वे बगमड़ेमें लेटे थे, फुलमत आई, अपनी बाल्टी माँगने, सुबह भैरो पाँड़े ले आये थे किसी कामसे।

'कुलदीप, जरा भीतरसे बाल्टी दे देना' कहा था पाँड़ेने। सफेद साड़ीमें लिपटी-लिपटाई गुड़ियाकी तरह फुलमत आँगनमें इसी चौरेके पास आकर खड़ी हो गई थी। और बाल्टी उठानेके लिये जब कुलदीप झुका था तो फुलमत भी अपने दोनों हाथोंसे आँचलका खूँट पकड़ कर तुलसीजी की वन्दना करनेके लिए झुकी थी। कुलदीपके झटकेसे उठने पर वह उसकी पीठसे टकरा गई थी अचानक। तब न जाने क्यों दोनों मुस्करा उठे थे। भैरो पाँड़े क्रोधसे तिलमिला गये थे। वे गुस्सेके मारे चारपाईसे उठे तो देखा कि कुलदीप बाल्टी लिये खड़ा था और फुलमत तुलसी-चौरे पर सिर रख कर प्रार्थना कर रही थी। न जाने क्यों पाँड़ेकी आँखें भर आईं। बरसातके दिनोंके बाद इस खुरदरे चौरे को उनकी माँ पीली मिट्टी के लेवनसे सँवार देतीं, फिर श्वेत बलुई माटीसे पोतकर सफेद कर देतीं। शामको सूखे हुए चबूतरे पर घीके दीपक जलाकर माथा टेककर वे लड़कोंके मंगलके लिए विनय करतीं। तब वे भी ऐसे ही झुककर आशीर्वाद मांगती और पाँड़े बगलमें चुपचाप खड़े दियोंका जलना देखा करते थे।

पाँड़े को सामने खड़ा देख कुलदीप हड़बड़ाया और फुलमत बाल्टी लेकर चुपचाप बाहर चली गई। पाँड़े के चेहरे पर एक विचित्र भाव था, जिसे सँभाल सकने की ताकत उन दोनों के मन में न थी, और दोनों ही भय का कम्पन लिए इधर-उधर भाग खड़े हुए।

बहुत दिनों तक पाँड़े के चेहरे पर अवसाद का यह भाव बना रहा। कुलदीप डर के मारे उनकी ओर देख नहीं पाता, न तो पहले जैसी जिद कर सकनेकी हिम्मत होती, न तो हँसीके कलरवसे घरके कोने-कोनेको गुंजान बनानेका साहस। पाँड़ेने अपने दिलको समझाया, इसे लड़कोंका क्षणिक खिलवाड़ समझा। सोचा धरतीकी छाती बड़ी कड़ी है। ठेस लगते ही सारी गुलाबी पंखुरियाँ बिखर जायेंगी, दोनोंको दुनियाँका भाव-ताव मालूम हो जायेगा।

पाँड़े के रुख से फुलमत भी सशंक हो गई थी, वह इधर कम आती। कुलदीपके उठने-बैठने, पढ़ने-लिखने पर पाँड़ेकी कड़ी नजर थी। वह किताब खोलकर बैठता तो दियेकी टेममें श्वेत वस्त्रोंमें लिपटी फुलमत खड़ी हो जाती, पुस्तकके पन्ने खुले रह जाते और वह एक टक दियेकी लौकी ओर देखता रह जाता। पाँड़ेको उसकी यह दशा देखकर बड़ा क्रोध आता, पर कुछ कहते नहीं।

'कुलदीप' एक बार टोक भी दिया था—'क्या देखते रहते हो इस तरह, तबीयत तो ठीक है न।'

'जी' इतना ही कहा था कुलदीप ने, और फिर पढ़ने लग गया था। दियेकी टेम कुलदीपके चेहरे पर पड़ रही थी, जिसके पीछे घने अन्धकारमें लेटे पाँड़े क्रोध, मोह और न जाने कितने प्रकारके भावोंके चक्करमें झूल रहे थे। उन्हें फुलमत पर बेहद गुस्सा आता। टीमल मल्लाहकी यह विधवा लड़की मेरा घर चौपट करने पर क्यों लगी है। पता नहीं कहाँसे बह-दह कर यहाँ आकर बस गये। कुलच्छनी, अब क्या चाहती है, बाप मरा, पति मरा, अब न जाने क्या करेगी। जाने कौन सा मंत्र पढ़ दिया। यह कबूतरकी तरह मुँह फुलाये बैठा रहता है। न पढ़ता है न लिखता है। हँसना, खेलना, खाना सब भूल गया। पाँड़े चारपाईसे उतरकर इधर उधर चक्कर लगाते रहे। पर कुछ निर्णय न कर सके।

समय बीतता गया। कुलदीप भी खुश नजर आता। हँसता-खेलता। पाँड़ेकी छातीसे चिन्ताका भारी पत्थर खिसक गया। एक बार फिर उनके चेहरे पर हँसीकी आभा लौटने लगी। रूई-सूतका काम फिर शुरू हुआ। गाँवके दो-चार उठल्ले-निठल्ले आकर बैठ जाते, दिन गपास्टकमें बीत जाता। मुरली मल-मल ताल ठोंकते, और पिच्से थूँककर किसीको गाली देते या निन्दा करते। इन सब चीजोंसे वास्ता न रखते हुए भी पाँड़े सुनते जाते। उनका मन तो चक्कर खाती तकली के साथ ही घूमता रहता, हूँ-हाँ करते जाते और निठल्लोंकी बातोंमें सन्नाटेको किसी तरह झेल ले जाते।

पाँड़े उसी चारपाई पर लेटे थे। अन्तर इतना ही था कि दिन थोड़ा और ऊपर चढ़ आया था लहरोंकी टकराहट थोड़ी और तेज हो गई थी, रक्तकी तरह खौलता हुआ लाल पानी गाँवके थोड़ा और निकट आ गया था। उनकी नसें किसी तीव्र व्यथासे जल रही थीं। 'पांड़ेके वंशमें कभी ऐसा नहीं हुआ था'—वे फुसफुसाये। बगलकी दीवारमें ताखे पर रामायन की गुटका रखी थी; उन्होंने उठायी, एक जगह लाल निशान लगा था। पिछले दिनों कुलदीप रातमें रामायन पढ़ा करता था। जबसे वह गया है आज तक गुटका खुली नहीं। पाँड़ेके हाथ काँपे, गुटका उलट कर उनकी छाती पर गिर पड़ी। उठाकर खोला, वही लाल निशान—

कह सीता भा विधि प्रतिकूला।
मिलइ न पावक मिटइ न सूला॥
सुनहु विनय मम विटप असोका।
सत्य नाम करु हरु मम सोका॥

पाँड़ेकी आँखें भरभरा आईं। झरझर आँसू गिरने लगे। हिचकी लेकर वे टूट पड़े। 'यह चुड़ैल मेरा घर खा गई'—शब्द फूटे, किन्तु भीतर घुमड़ कर रह गये। गाली देनेसे ही क्या होगा अब, इतने तक रहता तो कोई बात थी, आज उसे बच्चा हुआ है, कहीं कह दे कि लड़का कुलदीपका है तो···नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता' पाँड़े बड़बड़ाये

उन्होंने अपने बालोंको मुट्ठियोंसे कसकर खींचा, जैसे इनकी जड़में पीड़ा जम गई है, खीचनेसे थोड़ी राहत मिलेगी। वे उठना चाहते थे, किन्तु उठ न सके। आँखोंके सामने चिनगारियाँ टूटने लगीं। उन्हें आज मालूम हुआ कि वे इतने कमजोर हो गये हैं। कुलदीपके जानेके बादसे आज तक उनका जीवन अव्यवस्थाकी एक कहानी बनकर रह गया है। चार-पाँच महीनेसे कुलदीप भागा है, पहले कई दिनों तक वे जरूर बहुत बेचैन थे, किन्तु समयने उस दुःखको भुलानेमें मदद की थी। आज फिर कुलदीप उनकी आँखोंके सामने आकर खड़ा हो गया। बीती घटानाएँ एक एक कर आँखोंके सामने नाचने लगीं।

फागुनका आरंभ था। मुखिया जी की लड़कीकी शादी थी। गाँव भरमें खुशी छाई रहती, जैसे सबके घर शादी होने वाली हो। शादीके दिन तो गाँव वालोंमें बनने-सँवरनेकी होड़ लग गई। सब लोग पट्टी कटा रहे थे, शौकीनोंकी पट्टी चार-चार अंगुल चौड़ी, छूरेसे बनी थी। कुएँकी जगत पर दोपहरके दो घंटे पहलेसे भीड़ लगी थी, और अब दो बजनेको आये, साबुन लग रही थी, पैरोंमें जमी मैल सिकड़ेसे रगड़-रगड़ कर छुड़ाई जा रही थी।

बारात आई। द्वार-पूजाकी शोभाका क्या कहना? बनारसकी रंडी नाचने आई थीं। छैल छबीलोंकी भीड़ जम गई थी। शामको महफिल जमी। मुखिया जी का दरवाजा आदमियोंसे खचाखच भरा था। एक ओर गलीमें सिमट कर औरतें बैठी हुई थीं। गाँव की लड़कियाँ, बूढ़ियाँ और कुछ मनचली बहुएँ। बाईजी आईं। अपना ताम-जाम फैला कर बैठ गईं। सारंगी लेकर बूढ़े मियाँने किन किन किया, बाई जी ने अलापके बाद गाया—

> नीच ऊँच कुछ बूझत नाहीं, मैं हारी समझाय
> ये दोनों नैना बड़े बेदरदी दिलमें गड़ि गये हाय

महफिलसे बहुत दूर, गाँवके छोर पर आमोंके पेड़ों पर फागुनके पीले चाँदकी छाया फैली थी। जिसके नीचे चितकबरेके चामकी तरह फैली चाँदनीमें एक प्रश्न उठा; 'मुखिया जी की महफिलमें पतुरियाने जो गीत गाया था, कितना सही था'

'कौन सा गीत'

'ये दोनों नैना बड़े बेदरदी……'

'धत्'

'उस दिन मैं बड़ी देर तक इन्तजार करता रहा'

'मेरी माँके सरमें दर्द था'

'कौन है ?' जोरकी आवाज गूँज उठी थी।

पासकी गलीमें एक छाया खो गई थी।

'कौन है ?' फिर आवाज आई थी।

'मैं हूँ कुलदीप'

'यहाँ क्या कर रहे हो।'

'नदीकी ओर चला गया था।'

'इस समय ?'

'पेटमें दर्द था।'

क्रोधकी हालतमें भी भैरो पाँडे मुस्करा उठे थे—झूठे, पेटमें दर्द था कि आँखमें। कुलदीपका सिर लज्जासे झुक गया था। उसे लगा जैसे एक क्षणका यह भयप्रद जीवन उसकी आत्मा पर सदाके लिए छा जायेगा। एक क्षणके लिए बोला हुआ यह झूठ उसके सारे जीवनको झूठा साबित कर देगा। एक क्षणके लिए झुका यह माथा फिर कभी न उठ सकेगा। वह झूठके इस पर्देको फाड़ डालना चाहता था, किन्तु…'कुलदीप' भैरो पाँडेने आहिस्ते-आहिस्ते कहा : 'तुम गलत रास्ते पर पाँव रख रहे हो बेटा, तुमने कभी अपने बाप-दादोंकी इज्जत के बारेमें भी सोचा है ? बड़े पुण्यके बाद इस घरमें जन्म मिला है भाई, इसे कभी मत भूलना कि

अच्छे घरमें जन्म लेनेसे कोई बहुत बड़ा नहीं हो जाता, किन्तु इस अवसरको गलत कह कर नीचे गिरनेसे बड़ा पाप और कोई नहीं है।' कुलदीपको लगा कि तीखे काँटों वाली कोई जीवित मछली उसके गलेमें फँस गई, है गरदनको चीरती हुई यदि वह निकल जाये तो भी गनीमत, किन्तु यह असह्य पीड़ा तो नहीं सही जाती और न जाने क्यों वह हिचकियों में फूट-फूट कर रो उठा था। भाईके मनकी पीड़ाकी कल्पना भी उसके लिए कष्टकर थी, किन्तु उसकी आत्मा अपने सम्पूर्ण भावसे जिस वस्तुको वरेण्य समझती है, उसे वह एकदम ही व्यर्थ कैसे कह दे! जिस छायामें न जाने क्यों उसे एक अजाने आनन्दका अनुभव होता है, उसे कालिख कह सकना उसके वशकी बात नहीं थी, और इस कष्टके भारको उसकी आँखें सँभाल न सकीं। भैरो पाँड़े भी भाईसे लिपट गये थे। उसकी पीठ सहला रहे थे और उसे बार-बार चुप हो जानेको कह रहे थे, 'यदि कोई देख तो, ले' उनके मनमें आया और वे कुलदीपको जल्दी-जल्दी खींचते हुए एक ओर चले गये।

आँसुओंमें जो पश्चात्ताप उमड़ता है, वह दिलकी कलौंजको माँज डालता है। पाँड़ेने सोचा था कि कुलदीप अब ठीक रास्ते पर आ जायेगा। उनके वंशकी मर्यादा अपमानके तराजू पर चढ़नेसे बच जायेगी, भूखों रह कर भी पाँड़ेने इज्जतके जिस बिरवेको खूनसे सींच कर तरोताजा रखा है उस पर किसीके व्यंग-कुठार नहीं चलेंगे।। किन्तु एक महीना भी नहीं बीता कि कुलदीप फिर उसी रास्ते पर चल पड़ा। छोटे भाईके इस कार्यको छिपकर देखनेकी पापाग्निमें भैरो पाँड़े अपनी आत्माको जलते हुए देखते किन्तु वे विवश थे।

चैतके दिनोंमें गर्मीसे जली-तपी कर्मनाशा किनारेके नीचे सिमट गई थी। नदीके पेटमें दूर तक फैले हुए लाल बालूका मैदान, चाँदनीमें सीपियोंके चमकते हुए टुकड़े, सामनेके ऊँचे अरार पर बन-पलासके पेड़ोंकी आरक्त पाँतें, बीचमें घूग्घू, चाहों, और जलविहार करने वाले पक्षियोंका

स्वर······कगारसे नदी तीर तक बने हुए छोटे-बड़े पैरोंके निशानोंकी दो पंक्तियाँ···सिर्फ दो।

'तुम मुझे मझधारमें लाकर छोड़ तो नहीं दोगे।' घुटन और शंकामें खोये हुए धीमे स्वर। श्यामाकी चीरती दर्दभरी आवाज।

एक चुप्पी, फिर हकलाती आवाज, 'मैं अपना प्राण दे सकता हूँ, किन्तु······तुमको···कभी नहीं······'

चाँदनीकी झीनी परतें सघन होती जा रही थीं, सुनसान किनारे पर भटकी हवाकी सनसनाहटमें आवाजोंका अर्थ खो जाता, कभी हल्के हास्य की नर्म ध्वनि, कभी आक्रोशके बुलबुले, कभी उल्लास तरंग, कभी सिसकियोंकी मरमराहट······

भैरो पाँड़े एक बार चाँदनीके इस पवित्र आलोकमें अपनी क्रूरता और निर्ममता पर विचार करनेके लिए रुक गये, तो क्या आज तकका उनका सारा प्रयत्न निष्फल था? क्या वे असाध्यको संभव बनानेका ही प्रयत्न करते रहे? एक क्षणके लिए भैरो पाँड़ेने सोचा—काश फुलमत अपनी ही जातिकी होती, कितना अच्छा होता वह विधवा न होती······तुलसी चौरे की बन्दना पांड़ेके मस्तिष्कमें चन्दनकी सुगंधकी तरह छा गई। उसका रूप, चाल-चलन, संकोच सब कुछ किसीको भी शोभा देने लायक था। एक क्षणके लिए उनकी आँखोंके समाने सफेद साड़ीमें लिपट फुलमतकी पतली-दुबली काया हाथ जोड़ कर खड़ी हो गई, जैसे वह अँचल फैलाकर आशीर्वाद माँग रही हो। भैरो पाँड़े विजड़ित खड़े थे, विमूढ़।

'यह असंभव है' पांड़ेने बैसाखी सँभाली और नीचेकी ओर लपके।

'कुलदीप' बड़ी कर्कश आवाज़ थी पाँड़े की।

दोनों सिर झुकाये सामने खड़े थे, आज पहली बार पापकी साक्षीमें दोनों समवेत दिखायी पड़े थे। पाँड़े फिर एक क्षणके लिए चुप हो गये।

'मैं पूछता हूँ, यह सब क्या है' पाँड़े चिल्लाये, 'इतने निर्लज्ज हो तुम दोनों' पाँड़े बढ़कर सामने आये, फुलमतकी ओर मुँह फेर कर बोले 'तू

इसकी जिन्दगी क्यों बिगाड़ना चाहती है ? क्या तू नहीं जानती कि तू जो चाहती है वह स्वप्नमें भी नहीं हो सकता, कभी नहीं; कभी नहीं ।'

फुलमत चुप थी, पाँड़े दूने क्रोधसे बोले, चुप क्यों है चुड़ैल, बोलती क्यों नहीं ?

'मैं क्यों इनकी जिन्दगी बिगाड़ूँगी दादा'—वह सहसा एकदम निचुड़ गई, 'मैंने तो इन्हें कई बार मना किया············।'

'कुलदीप' पाँड़े दहाड़े, 'सीधे रास्ते पर आ जाओ, अच्छा होगा। तुमने भैरोका प्यार देखा है क्रोध नहीं; जिन हाथोंसे मैंने पाल-पोस कर बड़ा किया है, उसीसे तुम्हारा गला घोंटते मुझे देर न लगेगी।'

'दादा' कुलदीप हकलाया, 'हम दोनों······'

'पापी, नीच···' भैरो पाँड़ेके हाथकी पाँचों अगुलियाँ कुलदीपके चेहरे पर उभर आईं, 'मैं सोचता था तू ठीक हो जायेगा' पाँड़े क्रोधसे काँप रहे थे 'लेकिन नहीं, तू मेरी हत्या करने पर तुल ही गया है' वे फुलमतकी ओर घूम कर चिल्लाये—'क्या खड़ी है डायन, भाग नहीं तो तेरा गला घोंट कर इसी पानीमें फेंक दूँगा'

अन्धड़को पीते हुए तृषित साँप जैसा स्वर—यह सब मैंने किया था। पाँड़े चारपाई पर घायल साँपकी तरह तड़फड़ाते हुए बुदबुदाये। उनकी छातीसे सरक कर रामायणकी गुटका जमीन पर गिर पड़ी और उस पवित्र आराध्य वस्तुको उठानेका उन्हें ध्यान न रहा। कुलदीप दूसरे ही दिन लापता हो गया। पाँड़े अपनी बैसाखीके सहारे दिन भर गाँव-गिराँवकी खाक छानते फिरे। तीन दिन तीन रात बिना अन्न जल के वे पागलकी तरह कुलदीपको ढूँढते फिरे, किन्तु वह नहीं मिला। थक कर, हार कर पाँड़े वापस आ गये। बाप-दादोंकी इज्जतकी प्रतीक इतनी लम्बी विशाल बखरी, जिसकी दीवालें मुँह दबाये शान्त, पुजारीके तपकी तरह अडिग खड़ी थीं, किन्तु कितनी सुनसान, डरावनी, निष्प्राण पिंजरकी तरह लगती थी यह बखरी। चौकट पर पैर रखते हुए पाँड़ेकी आत्मा कराह उठी—चला

गया !' बैशाखी रखकर पाँड़े आँगनके कोनेमें बैठ गये—अब वह कभी नहीं लौटेगा ।

रातमें उन्हें बड़ी देर तक नींद नहीं आई । कुलदीपको बचपनसे लेकर आज तक उन्होंने कभी अपनी आँखकी ओट नहीं होने दिया । छुटपनसे लेकर आज तक खिलाया, पिलाया पाला-पोसा, और आज लड़का दगा देकर निकल गया । पाँड़े अधरोंकी मेड़के पीछे व्यथाके शैलाबको रोकनेका असफल प्रयत्न करते रहे ।

४

भोर होनेमें देर थी, उनींदी आँखें करुआ रही थीं, किन्तु मनकी जलनके आगे उस दर्दका क्या मोल । पाँड़े उठकर टहलने लगे । सामने की बँसवारके भीतरसे पूरबी क्षितिज पर ललछौंहाँ उजास फूटने लगा था । गलीकी मोड़के कच्चे मकानके भीतरसे जाँतकी घर्र-घर्र गूंज रही थी । एक घुमड़ता गरगराहटका स्वर, जिसके पीछे जाँतवालीके कंठकी व्यथाकी एक सुरीली तान टूट-टूट कर कौंध उठती थी ।

मोहे जोगिनी बनाके कहाँ गइले रे जोगिया

पाँड़े एक क्षण अवाक् होकर इस दर्दीले गीतको सुनते रहे । पियासे, भूले-भटके, थके हुए स्वर, पाँड़ेकी आत्मामें जैसे समान वेदनाको पहचान कर उतरते चले जा रहे हों ।

'अब रोने चली है चुड़ैल' पांड़े पागलकी तरह बड़बड़ाते रहे—'रो रोकर मर, मैं क्या करूँ ।'

बाढ़के लाल पानीमें सूरज डूब रहा था, पाँड़े बैशाखीके सहारे आकर दरवाजे पर खड़े हुए, नदीकी ओर आदमियोंकी भीड़ खड़ी थी । वे धीरे धीरे उधर ही बढ़े । सामने तीन चार लड़के अरहरकी खूटियाँ गाड़ कर पानीका बढ़ाव नाप रहे थे ।

'क्या कर रहा है रे छबीला' पांड़े बलात् चेहरे पर मुसकराहटका भाव लाकर बोले ।

'देखता नहीं लँगड़ा, बाढ़ रोक रहे हैं।'

पाँड़े मुसकराये—जैसा बाप वैसा बेटा। तेरा बाप भी खूँटिया गाड़ कर कर्मनाशाकी बाढ़ रोकना चाहता है।

'वह भीड़ कैसी है रे छबीले'

'नहीं जानते, फुलमतको नदीमें फेंक रहे हैं, उसके बच्चेको भी, उसने पाप किया है' छबीला फिर गंभीर खड़े पाँड़ेसे सटकर बोला : 'क्यों पाँड़े चाचा, जान लेकर बाढ़ उतर जाती है न।'

'हाँ, हाँ' पाँड़े आगे बढ़े। बोतलकी डाँट खुल गई थी। पाँड़ेके मनमें भयानक प्रेत खड़ा हो गया। 'चलो, न रहेगा, बाँस, न बाजेगी बाँसुरी। हुँ, चली थी पाँड़ेके वंशमें कालिख पोतने। अच्छा ही हुआ कि वह छोकरा भी आज नहीं है······।'

फुलमत अपने बच्चेको छातीसे चिपकाये टूटते हुए अगार पर एक नीमके तनेसे सटकर खड़ी थी। उसकी बूढ़ी माँ जार-बेजार रो रही थी, किन्तु आज जैसे मनुष्यने पसीजना छोड़ दिया था, अपने-अपने प्राणोंका मोह इन्हें पशुसे भी नीचे उतार चुका था, कोई इस अन्यायके विरुद्ध बोलनेकी हिम्मत नहीं करता था। कर्मनाशाको प्राणोंकी बलि चाहिये बिना प्राणोंकी बलि लिये बाढ़ नहीं उतरेगी······फिर उसीको बलि क्यों न दी जाय, जिसने पाप किया······पर साल जानेके बदले जान दी गई, पर कर्मनाशा दो बलि लेकर ही मानी······त्रिशंकुके पापकी लहरें किनारों पर साँपकी तरह फुफकार रही थीं। आज मुखियाका विरोध करनेका किसीमें साहस न था। उसके नीचताके कार्योंका ऐसा समर्थन कभी न हुआ था। 'पता नहीं किस बैरका बदला ले रहा है बेचारी से।' भीड़में कई इस तरह सोचते, ऐसा तो कभी नहीं हुआ था, किन्तु कौन बोले, सब मुँह सिये खड़े थे······।

'तुम्हारी क्या राय है भैरो पाँड़े' मुखिया बोला, सारे गाँवने फैसलाकर

दिया—एकके पापके लिए सारे गाँवको मौतके मुँहमें नहीं झोंक सकते। जिसने पाप किया है उसका दंड भी वही भोगे.........।

एक वीभत्स सन्नाटा। पाँड़ेने आकाशकी ओर देखा, आगे बढ़े, फुलमत भयसे चिल्ला उठी। पाँड़ेने बच्चेको उसकी गोदसे छीन लिया। 'मेरी राय पूछते हो मुखिया जी? तो सुनो, कर्मनाशाकी बाढ़ दुधमुहें बच्चे और एक अबलाकी बलि देनेसे नहीं रुकेगी, उसके लिए तुम्हें पसीना बहाकर बाँधोंको ठीक करना होगा......कुलदीप कायर हो सकता है, वह अपने बहू-बच्चोंको छोड़कर भाग सकता है, किन्तु मैं कायर नहीं हूँ; मेरे जीते जी बच्चे और उसकी माँ का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता......समझे।'

'तो यह है बूढ़े पाँड़े जीकी बहू' मुखिया व्यंगसे बोला : 'पापका फल तो भोगना ही होगा पाँड़े जी, समाजका दंड तो झेलना ही होगा।'

'जरूर भोगना होगा मुखिया जी......मैं आपके समाजको कर्मनाशासे कम नहीं समझता। किन्तु, मैं एक-एकके पाप गिनाने लगूँ तो यहाँ खड़े सारे लोगोंको परिवार समेत कर्मनाशाके पेटमें जाना पड़ेगा......है कोई तैयार जानेको......?'

लोग अवाक् पाँड़े की ओर देख रहे थे जो अपने कंधे से छोटे बच्चेको चिपकाए अपनी बैसाखीके सहारे खड़े थे, पत्थरकी विशाल मूर्तिकी तरह उन्नत, प्रशस्त, अटल......कर्मनाशाके लाल पानीमें सूरज डूब रहा था।

जिन उद्धत लहरोंकी चपेटसे बड़े-बड़े विशाल पीपलके पेड़ धराशायी हो गये थे; वे एक टूटे नीमके पेड़से टकरा रही थीं, सूखी जड़ें जैसे सख्त चट्टानकी तरह अडिग थीं, लहरें टूट-टूटकर पछाड़ खाकर गिर रही थीं। शिथिल......थकी......पराजित.........।

प्रायश्चित्त

दीवारका नीला रंग धुंध-सा सिहर कर समुद्रकी लहरों-सा हिलने लगा। कीलोंसे लटके चित्र, जैसे हिलते-डुलते भयानक जीव-जन्तु। कोनेमें आले पर रखी प्रसाधनकी चीज़ें गाजकी तरह अस्तित्व-हीन, क्षणिक। पलंगमें लगे अण्डाकार हलकी शीशेमें अपने प्रतिबिम्बको देख कर रंजनाको विश्वास न हुआ कि वह वही है। इतने तिरस्कार, ऐसे मूक प्रतिशोधहीन अपमानका विष पीकर उसकी मानवीय काया ज़रूर बदल गयी है। ललाटके कोनेमें पसीनेकी दो-चार बूँदें मोतीके नन्हें दानोंकी तरह झूल रही थीं। शिथिल बंधनसे खिसक कर दो-एक लटें पास ही सट कर उसके कानोंके नीचे श्याम रेखाएँ खींच रही थीं।

'बीबी जी!' कमरेके द्वार पर ठिठक कर नौकरानी खड़ी हो गयी। उसके मुँह पर एक क्षणके लिए जैसे सकता छा गयी।

'टबमें पानी भर गया है...' और वह आगे कुछ न कह सकी।

'तुम जाओ, अपना काम करो, मुझे स्नान नहीं करना है।'

रंजनाकी आवाजके खिंचावका कारण नौकरानी जानती थी। इस फूल-से खिले बँगले पर हुए वज्रपातकी कहानी उसे केवल मालूम ही नहीं थी, बल्कि उसके हर क्षणके विकासको उसने अविचारित ढंगसे देखा था। वह चुपचाप दबे पाँव कमरेसे बाहर हो गयी।

'यह कैसा प्रायश्चित्त है, हे भगवान!' रंजनाके होठोंसे निकल कर अस्फुट-सी ध्वनि कमरेमें खो गयी। वेदना और अपमानसे उसका मन जैसे विजडित हो गया, बार-बार सँभालनेकी उसने कोशिश की। शिथिल

हृदय-ग्रंथिको वह कस देना चाहती थी, पर सब व्यर्थ गया और वह फूट-फूट कर रो पड़ी।

'रंजना !' रमेशने कहा था, 'लौट जाओ, कब तक इक्केके पीछे-पीछे चलोगी !' रंजनाकी आँखें आँसुओंसे छलछला आयी थीं। वह आज अपने पतिके साथ दो डग भी चल सकनेकी अधिकारिणी न थी। मांगलिक लग्न-चीरकी गाँठें बाँधते हुए ब्राह्मणने वैदिक मंत्रोंकी साक्षी दे कर जन्म-जन्मान्तरकी सहचरी बनाया था, 'सप्त पद' चल कर उसने ज़िन्दगीकी अन्तिम मंज़िल तक साथ चलनेकी क़सम खायी थी। पर आज उसका दो पग भी साथ चल सकना पतिको स्वीकार न हुआ। क्षोभसे गर्दन उठा कर उसने रमेशकी ओर देखा, पर उसके चेहरे पर कोई भाव न था। रंजना चाहती थी, कुंचित रेखाओंमें घृणाका विष, वह देखना चाहती थी—ईषत् वक्र होठोंमें तीखा व्यंग्य, आँखोंकी कोरोंमें तीव्र तिरस्कार, पर यह आदमी है कि निर्जीव पत्थर-पिंड, जिसके चेहरे पर मुर्दनी-सी शान्ति है, आँखें निश्चेष्ट, सरल; अधरोंके बीच हल्की बादामी रेखा ज़रूर उभर रही है, पर उसमें भी तो कई घृणा नहीं, कोई असंतोष नहीं, बचे-खुचे स्नेहको लुटा देनेका भाव ही है—और यह सब कुछ रंजनाको बहुत बुरा लगा, मौतसे भी ज़्यादा बुरा।

रमेश कालेजमें प्रोफ़ेसर था। शहरके पश्चिमी छोर पर, नयी बस्तीके एक बँगलेमें वह रहता था। नयी बस्ती अभी दो-तीन साल पहले शहरकी बढ़ती हुई आबादीको सँभालनेके लिए बसायी गयी थी। कोई सात फर्लांगकी ज़मीनमें नये मकान बने हैं, जिनमें प्रायः नौकरी पेशेके लोग, कुछेक प्रोफ़ेसर, डाक्टर, और चन्द ऊँचे ओहदेके सरकारी कर्मचारी रहते हैं। सड़कें चौड़ी और दुरुस्त हैं। बँगले दूर-दूर और सुन्दर हैं। चौराहे शानदार और सब ओरसे बेशक़ीमती सामान बेचने वाली दुकानोंसे घिरे हैं।

इन सड़कों पर सुबहें वीरान, और दोपहरें उदास आती हैं; पर हर शाम, शहरकी आधी आबादी जैसे इधर ही टूट पड़ती है।

रंग-बिरंगे कपड़ेमें विभिन्न प्रकारके जोड़े इधर-उधर मटरगश्ती करते हैं। रमेशके दोस्तोंकी शिकायत रहती है कि वह बड़ा गदबगोल और भीरु है, दिन-रात घरमें बैठ कर अंडे सेया करता है। इसीलिए प्रायः उसके नज़दीकी मित्र रमेश और उसकी पत्नी रंजनाको 'लक्केका जोड़ा' कहा करते थे। यानी बाकी दूसरे तरहके कबूतरोंके जोड़े थे, थोड़े तेज़-तर्रार, थोड़े उड़ंकू। ऐसे जोड़ोंके बीच सच ही रमेशका जोड़ा लक्केका जोड़ा था, साफ़-सुथरा, सुन्दर, गोल-मटोल; पर सदा दरबेके भीतर बंद रहने वाला।

रमेश कभी-कभी जब रंजनासे अपने मित्रोंकी शिकायतका ज़िक्र करता, तो वह मुसकरा कर रह जाती। उसकी आँखोंमें एक शोखी होती, एक अजीब तरहका आत्म-विश्वास, जो पतिको वशमें रखने वाली हर औरतकी आँखोंमें होता है। वह कुछ कहती तो नहीं, पर उसकी आँखोंकी भाव-भंगिमा, उसके बिखरे बालोंका उल्लास, उसके ईषत् मुसकराते हुए होठोंके आकार मानो चिल्ला-चिल्ला कर कहते, 'जाने भी दो, जो जिसके जी में आए कहे। कितने सुखी हैं हम, हमारी इस छोटी-सी ज़िन्दगी पर कितनी ईर्ष्या करते हैं लोग!'

और फिर दोनों अपने दो बरसके छोटे बच्चे विनयको ले कर बीसियों प्रकारके वात्सल्य-भरे कौतुकमें लीन हो जाते। बीनू भी ठीक कबूतरके बच्चेकी तरह दोनों डैने फैला कर किलकारियाँ भरता और दोनों, पति-पत्नी उसके मुँहमें चारे डालते जाते, कभी खड़ा करते, कभी पास बुलाते, कभी झूलेमें सुला कर झुलाते रहते। बच्चेके केन्द्रकी परिधि पर दोनों घूमते रहते, पारस्परिक आमोद-प्रमोद, हास-केलिसे बँगलेका वातावरण निरन्तर उल्लासमें डूबा रहता।

जिस पति पर रंजनाका इतना अधिकार था, जो नितान्त उसका था, जिसके सुख और दुःखकी वह पूर्ण साथिनी थी, उसीने जब उसे लौट जानेको कहा, तो वह अवाक् , हतप्रभ खड़ी रह गयी।

आकाशमें मँडराते, डैनोंके बल धरती पर उतरते एक पक्षीने कहा, 'लौट जाओ, भगवान्के नाम पर इन बेचारों पर अमंगलकी छाया न डालो।'

हवाके झकोरोंमें, पेड़ोंकी फुनगियोंने गर्दन हिलाकर हामी भरी और वह पागलकी तरह चीत्कार करती लौट आयी थी।

एक साल पहलेकी बात है। आसिनका सूर्य अपने पूरे प्रतापमें दहक रहा था। दिनमें भयंकर ताप और रातमें ओस-सनी कड़ी शीत। रंजनाको दो दिनोंसे बुखार आ रहा था। रमेश परेशान था। उसने डाक्टरको बुलानेका निश्चय किया, तो रंजना बोली, 'रहने दो, यों ही ठीक हो जायेगा। कल पेलुड्रीन खाया है, आज भी दो टिकिया ले लूँगी, बस।'

पर पेलुड्रीनकी टिकियोंका कोई असर न हुआ। रमेशने कालेजसे दो दिन की छुट्टी ली थी, आज जाना जरूरी था। नौकरानीने खाना बनाया, किसी तरह खा-पीकर वह चलनेको तैयार होकर रंजनाके पास आ गया।

'जा रहे हो?' उसके पैंटको सोये-सोये पकड़कर रंजना बोली, 'जल्दी आ जाना!' और उसकी आँखोंसे दो बूँदें ढुलक पड़ीं। रमेशने उसका हाथ पकड़ लिया। बुखार मामूली था, देह अब भी गर्म थी।

'रंजन!' रमेशने सदाकी तरह दोनों हाथोंसे उसके मुँहको थामकर उसकी आँखोंमें झाँकते हुए कहा, 'घबड़ाओ नहीं, आज डाक्टरको लेता आऊँगा। बहुत जल्द ठीक हो जाओगी तुम।'

और उसने पैरोंके नीचेसे चादर खींचकर रंजनाको ढँक दिया। चादर की शीतलता, पतिके हाथोंका स्पर्श, और आश्वासनकी थपकियाँ—सबने मिलकर कुछ ऐसा असर किया कि रंजना आँखें मूँदकर स्वप्निल आनन्दमें विभोर हो गयी।

कोई दो बजेके करीब जब कालेजसे लौटकर रमेश आया, तो उसने देखा रंजना बुखारमें पड़ी छटपटा रही थी। नौकरानी घबड़ायी हुई-सी कभी इधर कभी उधर दौड़ रही थी और सामने कुर्सी पर बैठा विनय हुटक-हुटककर रो रहा था। रमेशने कोट उतारकर नौकरानीको दिया और बच्चेको बाहर ले जानेको कहा। फिर वह रंजनाकी चारपाईके पास कुर्सी खींचकर बैठ गया। सामनेके स्टूल पर आइसबैग, तौलिया, साफ कपड़ा और एक रकाबी में पानी रखा था। उसने कपड़े भिगोकर रंजनाके सिर पर रखे। तौलियेसे उसके मुँहके पसीनेको पोंछता रहा। कोई घंटे भर बाद रंजनाकी आँखें खुलीं।

'रंजना!' रमेशने उसके चिबुकको छू कर पूछा, 'कैसी हो?'

'सिरमें दर्द है।'

रमेश बगलकी आलमारीसे यू० डी० कोलनकी शीशी ले आया। और पट्टियाँ बना कर रंजनाके सिर पर रख कर पंखेसे हवा करता रहा।

'तुम यहाँ कब आये?' रंजनाने कुछ देर बाद पूछा।

'कुछ देर पहले, क्यों?'

'तुमने अभी नाश्ता तो नहीं किया?' रंजना उसकी ओर एकटक देखती रही।

'हो जायेगा,' रमेशने कहा और उसके सिर पर रखी पट्टीको बदलने के लिए हाथ बढ़ाया। रंजनाने उसका हाथ पकड़ कर धड़कते हुए वक्ष के बीच लगा लिया। रमेशने मुसकरा कर पट्टी उठायी। कनपटीके पास पसीनेकी दो-चार बूँदें झलकने लगी थीं, उसने बड़े इतमीनानसे बालोंकी लटें हटा कर तौलियेसे पोंछ दिया। और पसीने, ज्वरसे श्लथ, तपित, कोलनकी सुगंधसे सुवासित कनपटीके हिस्सेको चूम लिया। रंजना मुस्करा उठी, जैसे कुंकुमकी भरी डिब्बी उलट गयी, सारा वातावरण गुलाबी रंगमें सराबोर हो गया। 'क्यों गर्म है?' रंजनाने शरारतसे मुस्कराते हुए पूछा।

'नहीं, मीठा और सुगन्धित !' रमेश बोला ।

रंजना हँसी । वह कुछ कहने ही जा रही थी, कि कमरेमें डाक्टर आ गया । वह नयी बस्तीके ही एक बंगलेमें रहता था । रंजनाके चेहरे पर अब भी तृप्तिकी एक हँसी थी, जो उड़े हुए कपूरकी तरह सुवास छोड़ गयी थी । डाक्टरने परीक्षा की । वह आश्चर्यसे रोगिणीकी ओर देखता रहा, जो एक-सौ दो डिग्री बुखारकी हालतमें भी ऐसी प्रसन्न दिखायी पड़ती थी ।

'कोई भयकी बात नहीं है मिस्टर रमेश ।' डाक्टर बोला, 'मलेरिया है, मौसम नहीं देखते आप ! दिनमें इतनी सख्त गर्मी पड़ती है और रातें इतनी सर्द । जरा भी एक्सपोजर हुआ कि बस । थोड़ी सावधानी रखिएगा ।'

दवाके बारेमें बातें करते समय डाक्टरकी आँखें रोगिणीके चेहरे पर टिकी थीं । वह शायद अब भी उस हल्की मुसकानकी प्रतीक्षामें था । डाक्टरने शहरकी गन्दगीका बयान किया । वह म्युनिसिपैलिटी वालोंकी असावधानीको कोसता रहा । उसने रोगियोंकी बाढ़का ज़िक्र करते हुए प्राइवेट डाक्टरोंकी अयोग्यताकी बातकी । उसने कहा कि सरकारी अस्पतालों की हालत तो और भी खराब समझिए । ऊँचे अफ़सरोंसे रिश्ते रखने वाले मामूली डाक्टर लंबी-लंबी तनख्वाहें फटकार रहे हैं । रंजना चुपचाप इस नवयुवक डाक्टरको देखती रही, जो शक़ल-सूरतसे भोला-भाला, बोदा मालूम होता था; पर बातोंमें सफाई थी और उठने-बैठनेमें शालीनता थी ।

डाक्टरने दवाका पुर्जा लिखा और कल फिर आनेको कह कर चला गया ।

शामका वक्त था । रमेशको किसी कामसे देर हो गयी थी । रंजना बंगलेके सामने कुर्सी डाल कर बैठी हुई थी । सामनेसे डाक्टर आता हुआ दिखायी पड़ा । वह उसे कुतूहलसे देखती रही ।

'नमस्कार रंजना भाभी !' डाक्टरने कहा । यद्यपि वह उम्रमें रमेशसे छोटा न था, परन्तु उसने इसी रिश्तेको पसन्द किया । दवा-दारूके दिनोंमें

परिचयकी घनिष्ठताके साथ इस रिश्तेको भी उसने अपनी फ़ीसकी तरह ही पा लिया। उसके कहे हुए शब्द पहले तो निरर्थक मालूम होते, 'भाभी' सम्बोधन अभिधामें ही जड़ लगता; परन्तु धीरे-धीरे न जाने उसके स्वरोंमें कौन-सा परिवर्तन हो गया, हृदयके भीतरसे बीसियों अर्थोंसे भरा हुआ यह सम्बोधन रंजनाके वस्त्र पकड़ कर खींचने लगता। वह चुपचाप डाक्टरकी ओर देखने लगती, अपनी ही बेवकूफ़ी पर हँस देती और डाक्टर इसे पुरस्कार समझ कर प्रफुल्ल चित्तसे स्वीकार कर लेता।

'रमेश भाई अभी आये नहीं शायद !' वह बड़े प्यारसे उसके पतिकी तारीफ़ करता। रंजना-जैसी औरतको प्रसन्न करनेके लिए शायद उसने इसे आवश्यक समझा। पर कभी-कभी रमेशकी असावधानी पर रोष भी व्यक्त करता। गृहस्थीके उत्तरदायित्व पर बड़-बड़ी बातें करता और रंजनाको स्वास्थ्यके प्रति सावधान रहने और सुबह-शाम घूमने-फिरनेका उपदेश देना न भूलता।

डाक्टर निःसंकोच आता-जाता रहा। उसके आनेसे रंजना अपने रिक्त समयको बात-चीत, हँसी-मज़ाकसे भर लेती। उसकी बातें बच्चे-सी सरल और विद्वानों-सी टेढ़ी लगतीं; पर उनमें एक बात स्पष्ट थी कि वह रंजनाको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखता था। उसकी सारी शक्तियाँ रंजनाको प्रसन्न करनेके लिए विकल मालूम होतीं। वह गहरे सन्नाटेमें रंजनाके रूपकी तारीफ़ करता, उसके स्वभाव और व्यवहारकी प्रशंसा करता। डाक्टर अब तक कुँआरा था। रंजनाके पूछने पर कहता 'शादी तो करनी ही है भाभी, मैं वैसे लोगोंमें नहीं हूँ, जो औरतसे घबराते हैं और उसे जान कर कन्धेमें डाला हुआ जुआ समझते हैं, पर शादीके पहले कुछ तो सोचना पड़ेगा ही। आप जैसी औरतें मिलती ही कितनी हैं ?'

और वह अभावसे विह्वल नेत्रोंको आकाशकी नीलिमामें डुबा कर निश्चल बैठा रहता। रंजना उसके लिए द्रवित होती और उसकी दशा पर सहानुभूति व्यक्त करती।

डाक्टरके चले जाने पर रंजना शान्त कुछ देर तक बैठी रही। रमेश अब तक नहीं आया था। आज उसकी लापरवाही रंजनाको खटकने लगी। छोटी-सी चीज़ वृहद् आकार ले कर उसके सामने खड़ी हो गयी। उसे लगा कि वह नाचीज़ है, रमेशके लिए उस जैसी बेशक़ीमत वस्तुका कोई मूल्य नहीं। उसकी रगोंमें मृदुता फैलने लगी और वह असन्तोषमें छटपटाती रही।

तभी सामनेसे रमेश आया। उसके मुँह पर वही विकार-हीनता।

'क्यों रंजना!' रमेश बोला, 'तबीयत तो ठीक है न, ऐसे उदास क्यों बैठी हो?'

'मेरी तबीयत ठीक हो या न हो तुमसे मतलब?' वह तुनक कर बोली।

'क्यों, आज देवी इतनी कुपित क्यों हैं?'

सामनेसे नौकरानी बीनूको ले आयी। रमेशने उसे गोदमें उठा लिया। और ऊपर फेंक कर हाथोंमें भींचते हुए चूम कर बोला, 'क्यों बीनू बाबू, मज़ेमें हैं न?' बीनू रमेशकी गोदसे माँकी ओर जानेके लिए मचलने लगा।

'न न, ऐसी ग़लती कभी करियेगा मत, नहीं थप्पड़ खा जाइयेगा, आज मामला कुछ बेढब है।'

रंजना मुसकराकर विनयको लेनेके लिए उठी, तो वह उसे लेकर पीछे खिसक गया। 'लाओ न, दो इधर, मुझे शरारत अच्छी नहीं लगती'

'अच्छा जी, बीनू, कह दो माताजी नमस्ते, नहीं तो तुम्हारी माँ नाराज हो जायँगी।'

'माता जी नमछ्ते!' बीनूने तुतलाकर कहा और रंजनाने उसे रमेश की गोदसे छीनकर छातीसे लगा लिया। हँसीका समुद्र टूट पड़ा। बच्चेकी खिलखिलाहट माता-पिताके हृदयोंमें रेशमके धागेकी तरह घिरी गयी।

रातको अपने सोनेवाले कमरेमें राधाकृष्णके चित्रके सामने अगरबत्ती लगाते हुए रंजना बुदबुदायी, 'भगवान्, मेरी खुशीको स्थायी बनाओ!' और वह आँचल फैलाकर पति-पुत्रके स्वास्थ्य और मंगलके लिए बड़ी देर तक प्रार्थना करती रही। अगरबत्तीका धुआँ झुक-झुककर, देवताके वरद हस्तकी तरह उसके माथेको छूने लगा। वह कितनी प्रसन्न थी, एकाकी नारी। पति और पुत्रके विशाल प्रेमकी अधिष्ठात्री।

माघ बीत चला था। हाड़ कँपा देनेवाली ठंढके साथ ही मौसमकी उदासी भी विदा होने लगी थी। फागुन शुरू हो गया था। धूप चटख और आसमान साफ़ नज़र आता था। उस दिन प्रातःकाल रंजना देरसे उठी और आलस्यके कारण भोजनमें भी विलम्ब हो गया। रमेशके कालेजका वक्त हो गया था। उसने कपड़े पहने और आकर बोला, 'रंजना, मेरा खाना ढँककर रख देना, अब आकर ही खाऊँगा।'

'रुक न जाओ, खाकर जाना, एक दिन देर ही सही।'

'नहीं, देर ठीक नहीं है, तुम रख देना।'

रमेश चलने लगा, तो रंजना अचानक उबल पड़ी, 'सब तो मुझपर ही रोब लेते हैं गोया मैं खरीदी हुई दासी हूँ, एक दिन देर हो गयी, तो रूठकर चल दिये।' और उसने भातकी बटुली उतारकर नीचे पटक दी, 'तब खाना क्या अपने लिये बनेगा, ऐसा पहाड़ हो गया है पेट!'

'तुम हर बातमें तिनकने लगी हो।' रमेशने साधारण तौरसे कहा और चुपचाप चला गया।

उस दिन सचमुच रंजनाको बड़ा गुस्सा आया। उसे हर चीज़ व्यंग्य करती मालूम हुई। वह चुपचाप अपने सोनेके कमरेमें चली गयी और अंट-शंट सोच-सोचकर दुखित होती रही।

कोई तीन बजे किसीने बाहरसे पुकारा। सोचा, रमेश आया होगा, इसलिए चुप मुँह फुलाये बैठी रह गयी, तभी बाहरका दरवाज़ा खोलकर कोई भीतर घुस पड़ा।

'क्यों भाभी', डाक्टर बोला, 'तबीयत तो ठीक है न ?

रंजनाकी आँखें लाल थीं, जैसे वह रोती रही हो। डाक्टर उसके पास चला गया और उसने हाथ छू कर कहा, 'अरे, आपको तो बुखार मालूम होता है !'

'नहीं नहीं, मुझे बुखार नहीं है।' वह बोली; पर उसने डाक्टरका हाथ हटाया नहीं। उसकी आँखोंमें सहज सहानुभूतिके कारण एक चमक उत्पन्न हो गयी थी।

'क्यों भाभी', डाक्टरने ममत्व-भरे शब्दोंमें कहा—'क्यों, बात क्या है ?' और वह रंजनाके और भी समीप हो गया। रंजना कुछ बोली नहीं। वह संज्ञाशून्य बैठी रही। मनके एक कोनेमें अभिमानकी आहत साँसें उसके हृदयमें कसक पैदा कर देतीं, मस्तिष्क तीव्र पीड़ासे बेचैन था, डाक्टरके हाथोंके स्पर्शका ज्ञान था; पर उन्हें हटा देनेके लिए जिस क्रियाकी चेतना चाहिए, वह जड़ थी—गतिहीन, और तभी डाक्टरने अपने हाथों की गुंजलकसे उसे घेर लिया।

रंजनाको लगा कि उसके हृदयमें जमी बर्फ़ पिघल कर उसकी रगोंमें बहने लगी है, जिसके अत्यन्त सर्द प्रभावके कारण उसका अंग-अंग शिथिल होता जा रहा है। उसका शरीर जल रहा था और होंठ पीड़ासे काँप रहे थे। वह एक झटकेसे खड़ी हो गयी, डाक्टर उसके सामने ही बैठा था, पशुकी तरह घृणित और अपदार्थ। वह मारे क्रोधके काँप रही थी; पर कुछ बोल न सकी। डाक्टरने इस परिवर्तनको लक्ष्य किया और चुपचाप उठ कर चला गया। रंजनाने उसके जाते ही दरवाज़ा बंद कर लिया; पर वह शायद देख न सकी कि बगलकी खिड़कीसे दो आँखें उन्हें देख रही थीं।

रंजना आ कर अपने बिस्तर पर औंधे मुँह गिर पड़ी। पश्चातापकी अग्निमें उसका शरीर जल उठा। भयानक पीड़ाकी मूर्छामें, उसकी सोयी हुई प्रज्ञाने पूछा, 'ऐसा पाप ! तुमने यह क्या किया ? किस लोभसे पागल

हो कर तू पंकमें गिर पड़ी। कौन-सी वस्तु मिली है तुझे, जिसे वक्षसे लगा कर कह सकेगी कि यह हमारी है।' उसकी तमाम इंद्रियाँ पारेकी तरह विक्षिप्त हो गयीं।

'रंजना!' दीवारमें लगे राधाकृष्णके चित्रमें एक धूमिल छायाने पूछा 'तूने अपने पतिके साथ ऐसा विश्वासघात क्यों किया?'

वह निश्चेष्ट, संज्ञा-शून्य हो गयी। उसने देखा कि उसका शरीर श्वेत वस्त्रमें लपेटा हुआ रखा है, जिसके पास कोई नहीं—एकाकी, असहाय; काली-काली मूर्तियाँ उतरीं और उसे उठा कर ले चलीं। घृणासे उसका जी तिलमिला उठा। ग्लानिसे वह रो पड़ी।

'नहीं, मैंने ऐसा कभी नहीं चाहा।' उसके भीतर किसीने आश्वासन दिया। जो कुछ हुआ, वह सब अचानक हुआ, अनचाहा हुआ। लेकिन डाक्टरको इतना मौक़ा भी तो तुम्हींने दिया? हृदयकी क्षुद्र भावनाके वशीभूत होकर तुमने अपनेको रोका भी तो नहीं?

'लेकिन यह मेरा अपराध नहीं है, मैं निर्दोष हूँ, निष्कलंक।' और वह बिस्तर पर मछलीकी तरह तड़प उठी।

शाम हो गयी। गहरी, उदास, मायूस शाम! पश्चिममें डूबते सूरज पर पछुवाके थपेड़ोंसे उठे गर्दका बादल छा गया। सिन्दूरी शाम काली पड़ गयी। रमेशके बँगलेमें जैसे कोई गति न थी, कोई जीवन न था। रंजना उठी, तो उसके शरीरमें दर्द था। वह चुपचाप कमरेसे बाहर निकल आयी, अनपेक्षित स्तब्धतासे उसका जी कराह उठा।

रंजनाने सोचा था कि तमाम बातें समयके चक्रमें पड़कर सदाके लिए भूल जायेंगी। इस छोटे-से अपराधके मार्जनके लिए उसने घोर पश्चाताप किया। वह पुनः इस काँटेको निकाल कर प्रसन्न-चित्त अपनी गृहस्थीकी गाड़ीको सँभालनेके लिए संकल्प कर चुकी थी। पर दासी-चक्रमें पड़कर यह घटना तूफ़ानकी तरह उठने लगी। नौकर-नौकरानियोंसे

बात मालिक-मालकिनों तक पहुँची, और देखते ही देखते नयी बस्तीमें प्रोफ़ेसरकी पत्नीके व्यभिचारकी कहानी फैल गयी।

दो-चार दिन बीत गये। रमेशके व्यवहारमें रंजनाको कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन दिखाई न पड़ा। सारा काम चुपचाप चलता रहा।

उसी रातको रमेशने कहा, 'रंजन, मैं बाहर जा रहा हूँ।'

रंजना चुप रही तो रमेश फिर बोला, 'मैंने कालिजमें छुट्टीले ली है, कल सुबह ही चला जाऊँगा।'

'अकेले जाओगे?' रंजनाने कठिनाईसे पूछा।

'नहीं, मेरे साथ विनय भी जायेगा।'

रंजना पूछना चाहती थी, 'और मैं?' पर न मालूम उसके गलेमें कौन-सी वस्तु अटक गयी। वह न रो सकी, न कुछ कह सकी। चुप गर्दन झुका कर पृथ्वीकी ओर देखती रह गयी।

'तुम्हारा न जाना ही ठीक है' रमेशने धीरे-धीरे कहा, 'कम-से-कम मेरे लिए न सही, पर विनयके लिए तुम्हारा जाना उचित न होगा।'

रमेश उसे व्यभिचारिणी कहता, कुलटा और बेहया कहता, तो भी उसके मनमें उतनी पीड़ा न होती। उसकी गोदसे उसका पुत्र छीना जा रहा था, और वह बेबस गायकी तरह खड़ी थी। गायसे भी बदतर, क्योंकि वह हुँकार भी नहीं सकती थी।

'सन्दूकमें रुपये हैं, जो उचित समझना खर्च करना।' रमेश कहता गया।

रंजनाका कलेजा मुँह तक आ गया। वह एक क्षणके लिए अपने पतिके विकार-हीन चेहरेकी ओर ताकती रह गयी।

और आज प्रातःकाल जब विनयको ले कर रमेश चला, तो वह संतप्त, दुःखिनी माँ अपराधिनी बन कर देखती रह गयी। रमेशने उसे लौट जानेको कहा। वह एक बार, शायद अन्तिम बार, बीनूको भर आँखों देख लेना चाहती थी।

'वीनू, माता जी को नमस्ते कर दो बेटा !' रमेशने बड़े प्यारसे कहा।

'माता जी नमछ्ते !' वीनूने अपने दोनों हाथ जोड़ कर सिरसे लगाया और तुतलाती आवाज़में 'नमछ्ते' कह कर चुप हो गया।

रंजना ठगी-सी वीनूकी ओर देखती रह गयी। अभी पिछले पक्षमें अपने नाखून रँगते समय उसने वीनूकी छोटी अंगुली पर भी नेल-पालिश लगा दिया था। उसे लगा जैसे दुपहरियाकी छोटी पंखुरीकी तरह लाल नाखून उसके सुहागकी बिन्दी है, जो सदाके लिए उससे दूर हो गयी। उसके वक्षके पास कोई चीज़ व्यथासे कसक उठी। उसके कंचुकीके बंध विषधर साँपकी तरह उसकी नसोंको जकड़ कर तोड़ने लगे। उसका वात्सल्य-भरा आँचल आज साँपकी केंचुल-सा अमंगलसे भरा था। वह फूट कर रो पड़ी। वह सोचती थी कि दोष किसका है। रमेशका, खुद उसका, या नियति का ?

'हे भगवान्', उसके मुँहसे निकला, 'यह किस अनकिये पापका प्रायश्चित्त है।'

पापजीवी

आधी रात बीत गयी, पूरबकी ओर क्षितिज पर शुक्र तारा उग आया, जो अन्धकारके समुद्रमें दीयेकी तरह झलमलाने लगा। बदलू मुसहर बगलके पक्खेसे पीठ अड़ाए माथेको टाँगोंकी गेंडुरमें छिपाए बैठा था। सामने पयाल पर उसकी लड़की टूरी शीतलाकी जलनसे छटपटा रही थी। लड़कीकी दशा देख कर बदलूकी देहका रोआँ-रोआँ पीड़ासे तड़प उठता। वह चाहता था कि किसी प्रकार लड़कीकी देहकी पीड़ा अपने ऊपर ले ले, सारी जलन उसकी देहमें चली आए; पर क्या यह उसके वशकी बात थी! वह गूँगेकी तरह बिच्छूके डंककी चोट सहता जाता था और बेजुबान बैल की तरह टुकुर-टुकुर लड़कीको ताक रहा था।

'बब्बू' टूरी हाँफती हुई बोली, 'पानी!'

बदलूने टीनकी कटोरीमें पानी लिया और लड़कीके सिरहाने आहिस्ता बैठ कर उसके मुँहसे कटोरी लगा दी। कटोरीका पानी एक साँसमें गट-गट पी कर टूरी बेहोश-सी पड़ी रही और तब सहसा उसने बदलूका हाथ पकड़ लिया...'बब्बू!'

'क्या है चिड़िया?' बदलू उसके मुँहके पास झुक गया, 'बोल री टूरी, बोल!'

'चोरी मत करना!' टूरी बोली।

बदलूको एक साथ ही जैसे धक्का लगा। पीड़ाके मारे वह तिलमिला उठा। उससे कुछ कहते न बना।

'नहीं करोगे न?' लड़कीने फिर पूछा।

'नहीं।' कठिनाईसे बदलूने कहा और आहत मनसे उठ कर दीवारके

उसीपक्खेमें पीठ लगा कर बैठ गया। टूरी अपनी माँकी कही बातें दुहरा रही है, उसने सोचा। बदलू और उसकी घरवालीमें कभी पटी नहीं। गोखुरू, कुईंके फूल, कमलगट्टे और पलाशके पत्ते-दोने बेच कर जब वह घर लौटता तो देसीका अद्धा बोतल साथ लाना न भूलता। जिस पर मुसहरिन उसके सात पुश्तको गंगाके दहनमें गर्क करती। बदलूको बर्दाश्त न होता तो सूखे रेंड़की तरह खड़खड़ा उठता, 'कहाँ है रे टूरी, ला तो टंगा। सालीकी बोटी-बोटी छिलगा दूँ।' टूरी अपने बापकी आवाज़ सुन कर खटमलके बच्चेकी तरह गुदड़ीमें चिपक जाती। मुसहरोंके झोपड़ोंके आसपास घूरा कुरेदती मुर्गियाँ फुर्रसे उड़ पड़तीं और आसमानकी ओर देखतीं। निराश-सा बदलू दुनिया-भरके रीत-रवाज, जंगली हवा और लड़की की नालायकीको कोसता हाथ मलता रह जाता, उसके गुस्सेकी गर्मी हाथके घट्ठोंमें खो जाती।

पिछले साल इस परिवारकी सारी माया-ममता बटोर कर बेचारी औरत चल बसी, पर मरते समय लड़कीको बदलूकी गोदमें रख कर उसने लाश की सौगन्ध दिला कर कहा—'देखो, इस टूअरीका ख्याल रखना और कभी चोरी मत करना!'

तबसे बदलूने आज तक कभी चोरी न की। चोरीके कारण उसके बाप बब्बर मुसहरकी जो हालत हुई, उसे भी वह कभी भूला न था। उसने अब तब ईमानदारीसे ज़िन्दगी बितानेकी हरचन्द कोशिशकी, परन्तु...बब्बर की याद आते ही बदलू मुसहरकी आँखोंमें पानीकी एक सतर चमक उठी। जलमें तैरती मछलीकी तरह उसकी आँसू-भरी आँखोंमें किसीकी गज़-भर चौड़ी छाती झूल गयी, जिस पर मकोयके रंगके बाल मधुमक्खीकी तरह काँपते रहते। बब्बरको शराब और गांजेकी लत थी, इसी नशेमें वह अपनी पत्नी और लड़केको बुरी तरह पीटता भी था; किन्तु इन तमाम लड़ाई-झगड़ेके बाद जब वह दिन-भर गाँवकी तलैयों, धनकटे खेतोंसे थका-माँदा लौटता तो उसके पास एक गठरीमें अन्धे साँप, मेंढक, कच्छ और बहुत

सागी मेंगचियाँ होतीं, जिन्हें वह झोपड़ीके दरवाज़े पर बिखेर देता, छोटे-छोटे बच्चे तालियाँ बजा कर इन जल-जीवोंसे खिलवाड़ करते, दूसरी गठरीमें धानकी बालियाँ होतीं, जिन्हें बड़ी मुश्किलसे वह खेतोंमें चूहोंके बिलोंको खोद कर निकाल लाता। उस दिन बब्बरके घर जैसे दिवाली उतर आती। मुद्दतसे खूँटी पर रखे लँगोटेको वह बाँधता। ज़ोरकी हाँक लगा कर बदलू को पुकारता। बदलू इस दावतकी खुशीमें कुत्तेके साथ साहियोंका बिल अगोरता होता, बनमुर्गियों, खरहोंके पीछे 'लीहो लीहो' करता दौड़ता रहता या कहीं मनमें, ठाकुरकी शादीमें आयी, क़सबिनके गीतकी कोई पाँत उठ आयी तो जंगली जुही, करौंदे और गोखुरूके फूल इकट्ठा करके उन्हें नोंच-नोंच कर हवामें उछालता रहता।

'बदलू!' बब्बर चिल्लाता, वह काँटे-झाड़ियाँ लाँघता-फाँदता अपने बाप के पास आ कर खड़ा हो जाता। बब्बर उसे हुमक कर अपनी ओर खींच लेता, और बदलू बापकी उस गज़-भर चौड़ी मकोयके रंगके बालों वाली छातीमें बन्दरके बच्चेकी तरह चिपक जाता।

'बे, बाबू बनेगा!' बब्बर उसकी बाहों, रानों और सीने पर अँजुरी-भर मिट्टी डाल कर बेरहमीसे रगड़ देता। फिर बदलू अपने बापकी देहमें मिट्टी मलता। सिगता मिट्टीके कण दोनोंकी काली देहमें अभ्रकके चूर्णकी तरह चमकने लगते। बाप-बेटे हँसते-कूदते और दोनोंकी आवाज़के हिलकोरोंसे मुसहरोंकी सुनसान मड़ई गुंजित हो जाती।

हवाका एक तेज़ झोंका आया, बाँसकी चाँचर खड़खड़ा उठी, शीत-भरी तीखी हवा सुजनीको बेधती लड़कीके शरीरसे छू गयी।

ऐसी सर्द रातोंमें जब ठंडके मारे नसों तकका खून सूख जाता, जाड़ेसे बदलूके दाँत किटकिटाने लगते तो बब्बर उसका हाथ पकड़ कर उठा देता।

'बे, क्या पत्ते जैसा काँप रहा है, सपाटा मार?' और वह खुद तब तक सपाटे खींचता रहता जब तक उसकी देह पसीनेसे भीग नहीं जाती।

बब्बरके नाम पर इलाके-भरके धनी-मानी काँप जाते, वह चोरोंका सरताज और नामी-गरामी डकैतोंका उस्ताद था। बनेत तो ऐसा कि हज़ारोंके मजमेको चीरता निकल जाये और क्या मजालकी ज़री चोट लगे या लाठी मिनके। ढाकबनके मुद्दन अहीरकी देस कम्पियातमें लठ पुजती थी, उसी साल नागपंचमीके मेलेमें मुद्दनके पट्ठेने मड़ईके किसी मुसहरको फाँसेसे मार लिया और बातकी गर्मीमें बब्बरको लुच्चा कह कर ज़ोर आजमानेकी चुनौती दी, तभीसे उन दोनोंमें बहुत लाग-डाँट रहने लगी, और कहते हैं कि उसी साल भरी गंगा लाँघ कर ठीक आधी रातको बब्बर अहीरोंकी मड़ई पर चढ़ आया और उसने मुद्दन अहीरके हाथसे उसकी भैंसकी पगही खोल ली। इतनी ताक़त भी बब्बरके किस काम आयी। आखिर एक दिन वह चोरी करते पकड़ा ही गया।

ऐसी ही तूफ़ानी रात थी वह भी। माँ-बेटे, दोनों गुदड़ीसे बदन ढँक कर टुकुर-टुकुर ताकते, बनमत्तीकी मनौती मानते, किसी परिचित आवाज़ पर कान लगाये बैठे रहे, सवेरा हो गया पर बब्बर नहीं लौटा। बग़लके एक मुसहरने ख़बर दी कि परसियाके ठाकुरके घर चोरी करते समय बब्बर पकड़ा गया है। उसकी माँ दहाड़ मार कर चिल्ला उठी। दोनों माँ-बेटे बब्बरको देखने गाँव गये, ज़मींदारके पक्के कुएँकी आड़से उन्होंने देखा कि बैठकके खंभेसे मोटी रस्सीमें बब्बर बँधा है। लाठियोंकी मारसे उसका सारा शरीर फट गया है, जगह-जगह काला खून सूखे कत्थेकी तरह जमा हुआ है और लोग-बाग उसे चारों ओरसे घेरे खड़े हैं, जिसका जी होता कूद-कूद कर पैरोंसे मारता और थूक कर उसकी देहको गाली देता खड़ा हो जाता।

'लोहा लाल करके इसकी आँखें फोड़ दो।' ठाकुरने आगे बढ़ कर कहा 'ऐसे ये थोड़े बतायेगा कुछ!'

लोहा गरम हुआ, उपलेकी आगको धौंका-धौंका कर हँसुएको बिलकुल लाल किया गया, और तब लाल दहकता हँसुआ ले कर एक आदमी

बब्बरकी आँख फोड़ने आगे बढ़ा। कुएँकी आड़से निकल कर मुसहरिन रोती-कलपती ठाकुरके पैरों पर गिर पड़ी। लोगोंने उसे भी बाल पकड़ कर खींचा और गालियाँ दीं, बादमें नवजादिक लाल मुंशीके कहनेसे ज़मींदारने उसकी आँख फोड़नेका इरादा छोड़ दिया, क्योंकि इसमें उनके भी फँस जानेका अंदेशा था। इससे तो अच्छा यही है कि सालेकी मार-मार कर, हड्डियाँ भी तोड़ दी जायें और अपने ऊपर आँच भी न आये।

'ऐसे क्या होता है ठकुराई?' बगलसे अपना लम्बा लोहबन्ना लिए मुद्दन अहीर चला आ रहा था, बोला, 'चोर-चोर मौसेरे भाई, इसकी घात तो हमीं जानते हैं।' और उसने अपना लोहा-मढ़ा लोहबन्ना उसकी पीठमें हूल दिया। बब्बर कराह उठा, बदलू वहीं छिपा आँखोंमें आँसू-भरे यह सारा तमाशा देख रहा था। वह दौड़ कर अपने बापके ऊपर गिर पड़ा। लड़केको देखकर मुद्दनने लोहबन्ना रोक लिया।

'बब्बू, ईका कियो?' बदलू इतना ही कह पाया था कि बब्बरने उसे अपनी देह परसे फेंक दिया और क्रोधसे पागल उसकी ओर घूर-घूर कर देखता रहा, बदलूकी समझमें कुछ नहीं आया कि इसमें गुस्सेकी क्या बात थी, वह तो अपने 'बब्बू' को बचानेके लिए उसकी देह पर सो गया था। वह कातर नेत्रोंसे अपराधीकी तरह अपने बापकी ओर देखता रहा, पर फिर उसके पास जानेकी हिम्मत न हुई।

उसकी माँ बहुत रोयी-कलपी, पर कुछ न हुआ। उसी दिन शामको थानेदार आये और उसे थाने ले गये। सुना, संगीन जुर्मके लिए उसे एक सालकी सजा हुई और पता नहीं कैसे बीमार था या क्या, जेलमें ही मर गया। कुछ लोग कहते हैं कि जब वह चोरीमें पकड़ा गया था, तब मुद्दनके लोहबन्नेसे उसके कलेजेमें चोट लग गयी थी। कोई कुछ कहता, कोई कुछ असलियत भला कौन जाने।

बदलू मुसहरकी जलती आँखोंमें आँसूकी बूँदें छलछला आयीं। उसने अपनी सर्द अँगुलियोंसे ढलकते हुए लोरको उतारा और उसे कुर्तेमें पोंछ लिया, बड़े इतमीनानसे, ताकि इस बेशक़ीमत चीजका एक टुकड़ा भी जमीन पर न गिरे, क्योंकि उसमें उसके बच्चूकी वे यादें पिघल गयी हैं, जो उसके हृदयको सदा तूफ़ानकी तरह मथ जाया करती हैं। किन्तु आँखोंमें व्यथाके लोर जैसे हजारों मनके पत्थरकी तरह मोटे थे, जिन्हें हिला सकना भी मुश्किल था। बदलू मुसहर अपने मनकी सारी पीड़ाको समेटे निरर्थक भावसे अँधेरी झोपड़ीकी कालिमामें देखता रहा। दुःख और पीडा उसके लिए अपरिचित शब्द न थे, किन्तु इनके उभारमें इतनी जलन होती है, यह उसे कहाँ मालूम था, मनमें धू-धू कर जल रही थी कोई गीली लकड़ी जिसके तीखे-कडुवे धुएँसे उसका गला रुँधने लगा और जिसकी आँच उसके मुंहको पके घड़ेकी तरह लाल बना रही थी।

बदलूने पक्खेसे अपनी पीठ हटायी जो देर तक एक जगह लगी रहने से दर्द करने लगी थी। टाँगोंके बीचसे सिर निकाल कर वह बाँसके चाँचर-के छिद्रसे शुक्रको देखने लगा, जो पूरबके आकाश पर निर्धूम उज्ज्वल अंगारेकी तरह दहक रहा था। कितनी जलन है इस तारेमें। भूखकी आगसे बदलूकी हड्डियाँ तक जल कर राख हो गयी थीं। उसने इस पेटके लिए क्या नहीं किया, किन्तु उसे खुद यह बड़ा अजीब मालूम होता है कि जिन्दगीके वे कसाले-भरे दिन कैसे गुजरे! वह बहुत पहले ही क्यों नहीं मर गया, माँ मरी, पत्नी मरी, किन्तु वह अब भी जीवित है और उसकी इस जिल्लत-भरी जिन्दगीका जैसे अन्त ही नहीं आता!

सवेरा होनेमें देर थी, रात-भरके जागे होनेसे बदलूकी आँखें लगने लगी थीं कि टूरी जोरसे चीख उठी। बदलू हड़बड़ा कर उठा, पास जा कर देखा, शीतलाके मटर बराबर दाने टूरीके पूरे शरीर पर छाये हुए हैं और वह भयंकर पीड़ामें छटपटा रही है।

'टूरी!' उसने रुँधे गलेसे लड़कीके माथेको दोनों हाथोंमें समेट कर

सुनाया। दूरीने कुछ कहा नहीं, आँसू-भरी आँखोंसे उसकी ओर देखती रही। बदलूकी आत्मा दर्द-भरी दृष्टिकी पीड़ासे काँप उठी। इतना कष्ट कैसे सह सकेगी, रात नागिनके पेटकी तरह भयानक और काली! सवेरा होता ही नहीं। मुर्गे डरके मारे दरबेमें सिकुड़े रहते। उस दिन दूरीकी हालत बहुत खराब हो गयी।

जंगलके बीच मुसहरोंकी देवी बनसतीका स्थान है। विशालकाय पीपलके मोटे तनेके पास पत्थर या मूर्तिखण्ड है जो सिन्दूर और मुर्गोंके खूनसे रंग कर गेरूकी शिलाकी तरह मालूम होता है। बदलूने पागलकी तरह उस लाल पत्थर पर माथा पटक दिया, 'सत्ती माई, दूरी···' उसके मुँहसे कुछ अस्फुट निकला और वह लड़केकी तरह फूट-फूट कर रो पड़ा। 'रोनेसे का होत है भाई' सामने खड़ा करीमन सोखा बोला, 'बड़ा बुरा पहरा चढ़ा है भैया, ई हत्यारिन ऐसे सुनती नहीं, कुछ खप्पर पूजा चढ़ाव।'

बदलू इसे अच्छी तरह जानता है कि दूधका खप्पर, इकरंगेकी धज और मुर्गेके चूजेसे देवी प्रसन्न होती है। किन्तु···यह सब कुछ···वह पायेगा कहाँसे! तभी उसके मस्तिष्कमें हज़ारों क़िस्मकी रुलाईका स्वर गूँजने लगा, जैसे आँधीके चक्रमें अबाबिलके बच्चे शोर मचा रहे हों! चोरी··· नहीं, वह न होगा, तब! और उसने ज़ोरसे अपने साहीके काँटोंकी तरह तीखे बालोंको कुरेदा। संगमूसाकी तरह काले चेहरे पर पसीनेकी बूँदें बिखर गयी थीं और औसतसे ज्यादा खिंचे होनेके कारण उसके काले-काले होंठ बुरी तरह भिंच गये थे। उसने एक ज़ोरका थप्पड़ अपने गाल पर मारा, आत्मग्लानिसे उसका मन अपने ही प्रति विरक्त हो उठा। पिछले हफ्तेकी मजूरीके रुपयोंसे वह शराब पी गया था। यदि वह रुपये होते···सत्ती माईकी मिनती आरज़ू करके वह दूरीकी जान बचा सकता था।

परसिया वाली सड़ककी बाईं तरफ़ लाल ईंटोंका एक छोटा-सा बँगला है, जिसके बने अभी पूरे दो महीने भी नहीं हुए। इस बँगलेमें ढाक-बनके

ठीकेदार रहते हैं। यह पूरा जंगल पहले 'बरम बाबा' की परतीके नामसे मशहूर था। ज़मीन वैसे ठाकुरोंकी थी, किन्तु पुराने ज़मानेमें वहाँ ठाकुरोंने किसी ब्राह्मणकी हत्या कर दी, सो पूरी ज़मीन बरम बाबाके नाम पर छोड़ दी गयी। पाँच सौ बीघे चकमें कोई आदमी डरके मारे पेशाब तक नहीं करता। वैसे पूरा जंगल बबूल और पलाशकी लकड़ियोंसे भरा है, किन्तु किसीकी क्या हिम्मत जो एक तिनका भी छू ले! कहते हैं, एक बार गोरी सरकारने परती तुड़वानेका निश्चय किया, ट्रैक्टर आया तो चलाने वाला ही मर गया, उसी रातको ज़मींदारकी बूढ़ी माँको सपना हुआ और उन्होंने बरम बाबाके चबूतरेको पक्का बनवा दिया और इस तरह बाबाकी नींव और भी पुख्ता हो गयी। बदलू मुसहरके लिए वह ढाकवन तो जैसे कामधेनु था! बब्बर जब चोरीमें पकड़ा गया तभीसे ठाकुरने उसका ताल-तलैया, खेत, खलिहानमें जाना बन्द कर दिया। हार कर वह जंगलकी लकड़ियाँ लाख, दोने, पत्ते आदि पर गुज़र करता रहा। पिछले साल उसने सुना कि ज़मींदारी टूट गयी तो ऐसा खुश हुआ जैसे दुनिया-भरकी ज़मीन उसीके नाम लिख जायेगी। मारे खुशीके नींद हराम हो गयी, धान-पान, माछ-मछलीकी उम्मीदसे वह जैसे उड़ा-उड़ा फिरने लगा, तभी एक दिन उसने देखा कि परसिया वाली सड़कके किनारे लाल ईंटें गिर रही हैं। पूछने पर पता चला कि सरकारने परती ज़मीनको एक ब्राह्मणके हाथ नीलाम कर दिया है और देखते ही देखते ठीकेदारके आदमियोंने जंगलको अपने कब्ज़ेमें ले लिया, बंगला बन गया, नौकर-चाकरोंकी भीड़ लग गयी। जंगलसे लकड़ी तोड़ना, पत्ते लेना, लाख, गोखुरू या शहद इकट्ठा करना बिलकुल बन्द कर दिया गया। पहले तो कई दिन तक बदलूको विश्वास था कि 'बरम बाबा' बदला लेंगे, किसी-न-किसी दिन ठीकेदारको ज़रूर हैजा होगा, किन्तु ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। लाचार औरोंकी तरह बदलूने भी मान लिया कि 'बरम बाबा' बूढ़े हो गये और उनका तेज मद्धिम पड़ गया।

बदलू जब ठीकेदारके सामने पहुँचा तो बरामदेमें बैठे वे कुछ गाड़ीवानोंसे गुथ रहे थे, जो अपने हर खेपका भाड़ा तुरन्त चाहते थे और ठीकेदार साहब उन्हें किसी दूसरे दिन ले जानेके फ़ायदे बता रहे थे। वैसे वे मनमें तो खूब जानते थे कि भाड़ा पाने पर पता नहीं अगले दिन गाड़ीवान आयें न आयें। बक़ाया रहने पर आदमी मुट्ठीमें रहता है। बहुत-कुछ नीच-ऊँच समझा कर ठीकेदारने गाड़ीवानोंको बिदा किया तो उनकी नज़र खम्भेसे सट कर खड़े बदलूपर पड़ी, जिसकी आकृति देखकर अचानक उनकी देहमें सुरसुरी दौड़ गयी।

'क्या है रे बदलू?' ठीकेदार साहब बोले, 'जा जा, लकड़ी चीर। इतनी देर तक तुम लोग इधर-उधर मटरगश्ती करते हो और इस देरके लिए एक पैसा से काटने लगें तो दुहाईके मारे कान फाड़ने लगोगे।'

'ठीकेदार साहब!' बदलू दोनों हाथ जोड़ कर सामने झुक गया, 'मेरी लड़की बहुत बीमार है, मरी जात है, हमें दो ठो रुपिया दे दो, मर कर मेहनत करके हम आपका सब चुका देंगे।'

'अरे वाह, मज़ाक करता है क्या भाई, अभी तीन दिन हुए, पिछले सतवारेकी पूरी-पूरी मजूरी बँटी थी, फिर मजूरी? यह कोई लंगर खुला है कि तुम्हें रोज़ राशन बाँटा करें। हमारे लिए तो जैसे तुम वैसे पचास। एकके साथ रियायत करो, पचासके साथ बद्दू बनो। ना बाबा, हमने ऐसा कभी न किया, न करेंगे। मानो, आज तुम्हारी लड़की बीमार है, कलको किसी औरकी बीमार होगी तो हम किस-किसकी मदद करेंगे!'

बदलूने बहुत आरज़ू-मिनती की, पर ठीकेदार साहबको न पसीज़ना था न पसीजे।

'हमारी तीन दिनकी बारह आना तो दिला दो ठीकेदार साब' हार कर उल्टी साँस खींचता बदलू बोला, 'ज़रा जल्दी करो बाबू, नहीं मरे पीछे ही मिला तो ले कर क्या करेंगे?' ठीकेदार उसकी बात न सुनते

हुए-से देख रहे थे, उसकी ज़िदसे परेशान हो कर बोले, 'तुम लोगोंसे काम कराना तो आफ़त मोल लेना है, अब तुम्हें कैसे समझाएँ कि सात दिनकी मजूरी इकट्ठा क्यों दी जाती है, तुम्हारी अक्लमें तो गोबर भरा है, उसमें कुछ घुसे तब न !' मारे गुस्सेके ठीकेदार साहब चारपाईसे उतर कर ज़मीन पर खड़े हो गये, 'जाओ भई, कोई इन्तज़ाम कर लो, तीन दिनकी और बात है, हम कहीं भागे जाते हैं ?'

बदलूकी आत्मा अपने छोटेपन, नालायकी और दीनता पर कराह उठी। उसके सम्पूर्ण शरीरको झकझोर कर वेदनाकी लहर तड़पने लगी। उसके मस्तिष्कके स्नायु अपमान, असहायता और असफल मनुष्यताकी आगसे जलने लगे। वह उसका अर्थ भले न समझता हो, किन्तु उमड़ती व्यथा से उसका सारा चेहरा घायल साँपके फनकी तरह लहराने लगा। उस झटकेसे वह पागल-सा हो उठा और अचानक उसने ठीकेदारका हाथ पकड़ लिया। भौंहोंमें पसीनेकी गुथी बूँदें, उनके बीच तापसे दग्ध लाल आँखें, डरावने होंठोंकी कुटिलता, कर्कश बालोंके बीच पसीनेसे सनी आकृति···ठीकेदार साहब बेतहाशा चीख उठे। बदलूने उनका हाथ छोड़ दिया, वह कुछ न समझता-सा वहीं खड़ा टुकुर-टुकुर देख रहा था, तब तक बीसों आदमियोंने दौड़ कर उसे पकड़ लिया।

'चोर साला !' ठीकेदार होशमें आ गये थे, आदमियोंको देख कर उनका भय दूर हो गया था—'बाँध लो सालेको !'

लकड़ी चीरते मज़दूरों तक खबर गयी। सनसनाती खबर जंगलके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक व्याप्त हो गयी। आदमियोंकी भीड़ टूट पड़ी, उस दिन-दहाड़े डाका डालने वाले चोरको देखने।

बदलू सामनेकी नीमसे मोटी रस्सीसे बँधा बैठा था, लाठियोंकी मारसे उसका शरीर फट गया था, पर वह चुपचाप ज़मीनमें मुँह गाड़े बैठा रहा, जो भी आता, दो लात, दो जूते मार देता, वह मारने वालेकी ओर देखता भी नहीं, होंठ दाबे सारी चोट सहता जा रहा था।

'इसकी आँखोंमें तो जैसे आँसू ही नहीं हैं।' ज़ोरकी एक लात मार कर ठीकेदार बोले। इसका बाप भी ऐसा ही बाघ था, ये साले पुश्तैनी बदमाश हैं। लाख करो, ये अपना पापका पेशा कभी नहीं छोड़ सकते।

सामनसे ज्वरसे आक्रांत, शीतलाके दाहसे जलती-काँपती दूरी आयी और बदलूकी देह पर गिर पड़ी।

'बब्बू! ई का कियो :' उसने कहा और सिसक उठी, किन्तु बदलूने बड़े गुस्सेसे उस बीमार लड़कीको अपनी देह परसे फेंक दिया। वह ज़मीन पर एक ओर लुढ़क गयी। बदलूकी आँखें क्रोधसे लाल थीं। आजसे बीस साल पहले अपने बापकी गिरफ्तारी पर उसने भी वे ही सवाल पूछे थे। तब उसे बड़ा क्रोध आया था कि बब्बरने उसे ढकेल दिया। आज सारा छिपा अर्थ उसकी आँखोंके सामने साफ़ हो गया, और इतनी मारसे भी जिन पत्थरकी आँखोंसे पानी नहीं चू सका, बापकी याद आते ही आँसूकी गंगा उमड़ पड़ी।

केवड़ेका फूल

अँधेरा भी कम सुन्दर नहीं होता, और खासकर ऐसा अँधेरा, जिसकी जड़से उजाला फूटने वाला हो, ठीक गुल्चीनकी काली नंगी डालकी तरह, जिस पर चाँदकी तरह मुसकराता फूल निकल आये। चैतके अँधेरे पाखकी तीज थी। मैं अपने छतपर लेटा सामनेकी अमराईको देख रहा था, जिसके अन्तरालसे चाँदका गोला ऊपर उठने लगा था। मेरी आँखों के सामने लाल ईंटोंकी इमारत है, जिसकी पश्चिमी खिड़की कई दिनोंसे बन्द रहती है, जिसमें पहले कई बार जलते दीयेको देख चुका हूँ, जो ऐसी अँधेरी रातोंमें अंधकारकी लहरोंमें झूलता प्रतीत होता था। दीयेकी मद्धिम जोतके साथ ही मेरी आँखोंमें अनिताकी झुकी हुई आँखें भी तैरने लगती हैं, जो दियेके सामने निधड़क भावसे देखती रहती थीं, जैसे कुछ देखना ही इनका काम हो, देखनेकी कोई वस्तु सामने हो तो भी, न हो तो भी। न जाने घंटों इस प्रकार दीयेकी ओर देखनेमें उसे क्या राहत मिलती है, किन्तु मुझे तो उसकी ऐसी हालत देखकर भय लगने लगता। कई दिनसे सोचता था, पूछूँ—आखिर उसे हो क्या गया है! वह इतनी उदास और खिन्न क्यों रहती है। कस्बे-भरमें उसके बारेमें जो प्रवाद फैला है, उसे मैंने न सुना हो, ऐसी बात नहीं। मैं जानता हूँ कि कोई भी विवाहित लड़की अपने पति-गृहसे माँ-बापके बिना बुलाये यदि चली आये, तो यह कम-से-कम अपने समाजमें साधारण बात नहीं मानी जाती। पर अनिताके विषयमें इतनी बातके आधार पर कुछ निर्णय दे सकना मेरे लिए तो बहुत मुश्किल है। इसलिए नहीं कि मैं कोई बहुत बड़ा कारण जानना चाहता

हूँ, बल्कि इसलिए कि मैं अनिताके स्वभावको अच्छी तरह जाननेका थोड़ा दावा रखता हूँ।

होलीके तीन-चार रोज पहले इसी छत पर जब लेटा मैं सामनेके मुंडेरे की ओर देख रहा था, जिसके पीछे चाँदकी किरणोंका जाल अनजाने उलझ रहा था। मुझे लगा जैसे छतके उस मुंडेरे पर हाथ धरे कोई और खड़ा है। चाँदको रोकने वाली दीवारकी काली छाया ठीक मेरे बिस्तर पर पड़ रही थी, इसलिए यह अनुमान लगा सकना सहज कठिन था कि इस लंबी-चौड़ी छायामें कहीं अनिताकी भी छाया छिपी है या नहीं। चाँदके उठनेके साथ ही, फागुनी अन्धड़से धूसरित आसमानमें, धूमिल रोशनी फैलती जा रही थी और अब सामानेके मुँडेरेका हर भाग साफ़-साफ़ मेरी आँखोंके सामने खुला हुआ था, पर वहाँ कोई दूसरी छाया न थी। मैं विरूप-सा मुँह फेर कर दीवारकी काली छायाको रोशनीमें घुलते देख रहा था, जिसके पास काली पुतली-सी सिकुड़ी कोई मूर्ति खड़ी थी। अपनी छत पर अनिताको चुपकेसे खड़ी देख मुझे आश्चर्य हुआ, प्रसन्नता भी।

'सरोज!' वह बोली।

'हूँ!'

'सुनते हो!'

'हुँ।'

'अरे भाई, हुँ के अलावा भी कुछ सीखा है कि नहीं?'

'नहीं!' और तब बिना उसकी ओर देखे हाथ के एक झटकेसे मैंने उसके शरीर पर लिपटी चादरको खींच दिया। रुईके बारीक रेशेकी तरह चाँदनी उसके अंगोंसे लिपट गयी। ईटों वाली इमारतकी ऊँची दीवारें झुक गयीं, चाँदका प्रकाश उसके बालोंमें आ कर उलझ गया, तभी मैंने देखा कि वह रो रही थी और उसकी आँखोंसे झर-झर आसू गिर रहे थे। मैं अवाक् कुछ भयभीत-सा उसके पास खड़ा हो गया।

'अनिता !' मैंने कहा, किन्तु सोच न पाया, आगे क्या कहूँ। मुझे भय था कि कहीं नीचेसे माँ न आ जाएँ, पता नहीं वे क्या सोचेंगी, कहीं कोई देख ले, तो क्या कहेगा।

'अनिता, चुप हो जाओ !' मैं इतना ही कह सका।

वह चुप हो गयी और मेरी ओर एक क्षणके लिए देखती रही। झील की तरह साफ़ और नीली आँखोंमें शोककी काली छाया थी। उसके विवर्ण मुख पर सीपकी तरह जड़ी आँखें निश्चेष्ट भावसे पड़ी थीं। मैं उसकी ओर देख न सका, और मैंने गर्दन झुका ली।

'कोई ख़ास बात है, अनिता !' मैंने गर्दन झुकाए ही पूछा।

'मैं कल जा रही हूँ, सरोज !' वह इतना कह कर चुप हो गयी। मैं उसके कथनके मर्मको समझ न सका। आयी थी और जा रही है—इसमें नवीनता क्या ? मैं चुपचाप उसकी ओर देखता रहा।

'जाऊँ न !' उसने मेरी ओर आँसू-भरी आँखें उठायीं। इतनी पीड़ा भी किसी दृष्टिमें हो सकती है, ऐसा मैं नहीं सोच पाता, उसका गला व्यथा से रूँध गया था।

'तुम्हें कोई दुःख है, अनु !' मैंने पूछा, तो वह बिखर कर रोने लगी। मैं तो उसकी यह अवस्था देख कर हतप्रभ-सा हो गया। उसका इस तरह रोना निश्चित ही कोई गूढ़ अर्थ रखता है, और उसे जानना भी मेरा फ़र्ज है, किन्तु इस विह्वल अवस्थामें, इस प्रकार बातचीत कर सकना मेरे लिए अत्यन्त कठिन लगा। मैंने उसे भरसक समझाया-बुझाया और कल उसके घर आनेका वादा करके उसे नीचे तक पहुँचा आया।

दस वर्षकी उमरके पहले अनिता कैसी थी, यह मुझे नहीं मालूम, किन्तु उसे जब मैंने पहली बार देखा, तो इसके क़रीब रही होगी। इतने दिनों तक वह अपने मामाके यहाँ रही। पढ़ती थीं, क्योंकि उसकी माँका विश्वास था कि उनके मायके में जितनी अच्छी पढ़ाई होती है, उतनी

अच्छी इधरके किसी स्कूलमें नहीं होती। हाँ, तो यह सुन कर कि अब तक जो सिर्फ़ पढ़नेके लिए ही अपने मामाके यहाँ रह गयी, वही अनिता आज आ रही है। हम लोगोंको, विशेष करके जो उसीकी उमरके थे, बड़ा कुतूहल हुआ। मुझे औरोंसे ज्यादा, क्योंकि एक तो उसका घर मेरे घरसे बिलकुल सटा था, दूसरे उसकी और मेरी माँमें बहुत निकटका भाव था। उस दिन सवेरे-सवेरे ही माँने मुझे बताया कि आज अनिता आने वाली है, और न जाने कितनी देर तक अनिताकी तारीफ़का पुल बाँधती रही, यहाँ तक कि मैं उकता गया और उस ज़री-सी लड़की पर मुझे बेहद गुस्सा भी आया, जिसको मैंने देखा तक नहीं। माँने भी तो देखा होगा, जब वह बहुत छोटी थी, फिर कौन-सा सुर्खाबका पर लग गया है उसमें, कि जिसे देखो वही कहता है कि अनिता आने वाली है। अच्छा भाई, आने वाली है, तो आने न दो। उसके लिए इतना तूल-तड़ाम क्यों! आने वाली है, आवे।

अनिता आयी। छोटे-छोटे लड़के-लड़कियाँ उसे देखनेके लिए उसके घर आये। माँ सुबहसे ही अनिताके घर डेरा डाले बैठी थीं। मेरे मनमें तो आया कि न जाऊँ, पर मुझमें भी उसे देखनेकी उत्सुकता कम न थी, गया।

सफ़ेद रबड़की तरह चिट्टी गोरी एक बनी-ठनी लड़की जो ऊँचाईमें मेरे कंधे तक आए, एक बक्स पर बैठी गाल पर हाथ लगाए, टुकुर-टुकुर सबको देख रही थी, जैसे तमाम दुनिया उसके सामने नाचीज़ हो। मैं चुपचाप जा कर उसके बक्स पर ही खाली जगहमें वैसे ही गाल पर हाथ लगा कर बैठ गया, उसकी ओर देखा तक नहीं।

'ए लड़का'! वह फुदक कर बक्स परसे उतर कर खड़ी हो गयी और मेरी ओर मुँह फिरा कर बोली, 'भीतर हनुमानजीकी तस्वीर है, शीशेमें मढ़ी, कहीं टूट गयी, तो?'

'तो क्या?' मैंने बैठे-बैठे कहा, 'तेरे बैठनेसे नहीं टूटती थी?'

वह शायद इस तरहकी बात सुननेकी आदी नहीं थी, मारे गुस्सेके तमतमा गयी और फिर तुरन्त जैसे शिकारकी ओर बाज़ झपटे, मेरी ओर बढ़ी कि बीचमें उसकी माँने खींच लिया और मेरी ओर देख कर बोली, 'अनी, अरे यह तेरा सरोज भैया है न ! इससे झगड़ा करेगी ?'

'बड़ा आया है सरोज भैया !' उसने कड़वा-सा मुँह बनाया और अपनी माँसे तुनक कर बोली, 'अच्छा इससे कह दो कि बक्ससे उतर जाए ।'

'मैं तो खुद उतर जाऊँगा ।' मैंने खड़ा हो कर कहा, 'पर तू भी बैठने न पाएगी ।'

वह मेरे मुँहकी ओर हताश देखती रही, फिर तुरन्त ओंठ बिचका कर एक ओर चल पड़ी, जैसे इन बातोंको उसने सुना तक नहीं, मानों वह इसका उत्तर न दे कर ही अपना बड़प्पन दिखाना चाहती हो ।

अनितासे पहले-पहले दिन ही जो लड़ाई ठन गयी, उसे वह बहुत दिनों तक निभाती रही । खेल-कूदमें वह हमेशा मेरे खिलाफ़ नया गिरोह तैयार करती, बहुत-से लड़के उससे इतना डरते कि वे चाह कर भी मेरे पास आनेकी हिम्मत न करते; किन्तु यह सब क्षणिक था । बचपनके ये तमाम उत्पात न जाने कब छूमन्तर हो गये । अनिता घरके बाहर कम निकलती, उसके चलने फिरने, बातचीत करने पर जैसे प्रतिबन्ध था । कभी-कभी मेरी माँसे मिलने मेरे घर आती, तो मुझसे सीधे बात न करती । माँसे कहती कि सरोज भैयासे यह कह दो, वह कह दो । मुझे बड़ा आश्चर्य होता, मैं उसकी ओर कुतूहलसे देखने लगता, तो वह न जाने क्यों अपनी आँखें झुका लेती, तब वह बहुत सुन्दर लगती, उससे बात करनेको जी तरस जाता ।

और फिर एक दिन ऐसा हुआ कि अनिताकी बारात आयी । बाजे बजे, नाच हुई । और वह एक बहुत धनी परिवारमें व्याह कर चली गयी । इसके बाद बचपनके खेल-तमाशेकी तरह हम उसे भूल गये ।

तीन बरसके बाद, क़स्बेमें फिर एक दिन सर्वत्र अनिताके आनेकी चर्चा फैली हुई थी। जिसे देखो, वही अनिताकी बात करता, पर कितना अन्तर था, आज और उस दिनकी अनितामें, जब वह अपने मामाके घरसे पहले-पहल क़स्बे आयी थी। उस दिन सबकी आँखोंमें उसके प्रति ममत्व था प्यार और स्नेह था किन्तु आज सबकी आँखोंमें अनिताके लिए घृणाका दाह था, सबकी ज़बानपर उसके लिए दुर्वचन थे, सबके मुँहपर जैसे उसके कार्योंने कालिख लगा दी हो। भला बिन बुलाए कोई लड़की मायके आती है! इस बिटियाने तो बापकी पगड़ी उतार ली। कोई कहता कि बुरी तो यह बचपनसे थी। ननिहालमें रह कर इतनी लाड़ली बन गयी थी कि किसीको कुछ गिनती न थी। कोई कहता कि ज़माना ही बुरा है भाई! ऐसी लड़कियों पर कौन विश्वास करे। पता नहीं कितने ऐब भरे हैं पेटमें। यह तो कहो कि वे लोग बड़े आदमी हैं भैया, कुछ कहा-सुना नहीं, नहीं हम-तुमकी बात होती, तो पैर तोड़कर रख देते।

जितने मुँह उतने तरहकी बातें सुनाई पड़तीं और सहसा यह निर्णय करना मुश्किल हो जाता कि सही बात क्या है। मैं अक्सर अपने इस छतसे अनिताको सामनेकी कोठरीमें बन्द पाता। वह कभी-कभी खिड़कीकी छड़ें पकड़कर निरुद्देश्य भावसे बाहरकी ओर देखती रहती। रातमें घरके सभी लोगोंके सो जानेपर भी उसके घरमें दीया जलता रहता और वह उसके सामने बैठी रहती। मैं कई बार सोचता कि क्यों न अनितासे मिलकर तमाम बातें पूछ लूँ, पर कभी साहस न हुआ। एक दिन बहुत साहस कर के अनिताके घर गया। दरवाज़ेमें उसकी माँ शीतलपाटी पर बैठी कोई कपड़ा-सी रही थीं।

'चाची!' मैंने पुकारा तो उन्होंने सुई चलाना छोड़ कर मेरी ओर देखा, बोलीं, 'सरोज, अरे आ भाई! बैठ, तू तो जैसे क़सबेमें रहता ही नहीं। कभी न आना, न जाना।' चाची बहुत देर तक इधर-उधरकी

ऊटपटाँग बातें करती रहीं, जिनमें मेरी कोई दिलचस्पी न थी, पर लाचार उनकी बातोंका जवाब देना ही पड़ता ।

'अनिता आयी है न चाची !' मैंने चलते-चलते पूछा ।

'हाँ, आयी है ।' उन्होंने मुँह बिचका कर कहा, 'उधर वाली सीढ़ीसे जाओ, ऊपर होगी । कमरेमें बन्द रहती है, न किसीसे कुछ बात न चीत ।'

मैं ऊपर गया, तो मुझे देखकर अनिता चारपाईसे उठ कर खड़ी हो गयी । पासमें एक छोटा-सा बच्चा पड़ा था, जो उसके उठनेके हिचकोलेसे जाग पड़ा और रोने लगा । अनिताने बच्चेको उठा लिया और उसे चुप कराने लगी । मेरे हाथमें केवड़ेका फूल था, जिसे मैंने रोते हुए बच्चेकी ओर बढ़ाया । उसने फूल ले लिया और चुप भी हो गया । बच्चेने फूलकी पंखड़ियोंको हिलाया-डुलाया और उसे तोड़नेकी मुद्रामें टेढ़ी करके अपनी माँके होठोंके पास सटा दिया । अनिता हँसी 'क्यों, अभी केवड़ेके झाड़में बैठना छूटा नहीं क्या ?' अनिता मेरी ओर मुसकरा कर बोली, 'चाची नहीं जानतीं शायद ।'

'सब बातें सभी जान जाते हैं क्या ?' मैंने इस सवालके साथ यह आशा भी की कि शायद अनिता कुछ बताए, किन्तु वह मुसकरा कर रह गयी ।

उस दिन कोई खास बात न हो सकी और मैं जितने घने रहस्यको ले कर उसके पास गया था, उसमें किसी तरहकी कमी न आयी । मैं निष्फल वापिस लौट आया ।

मैं जानता था कि अनिताके मनकी बातको इतनी आसानीसे निकाल सकना मुश्किल है, यदि वह खुद खास तरहकी मनोदशामें अपने ही न कह दे ।

दो महीने बाद अचानक सुना कि अनिताके बच्चेकी मृत्यु हो गयी । बीमार वह पिछले कई दिनोंसे था, किन्तु इतनी अल्पायु ले कर आया

है, ऐसी उम्मीद किसको थी ! यह एक और विचित्र घटना हो गयी, जिसके लिए लोगोंमें अनिताके लिए सहानुभूति कम, पापके फलके लिए ईश्वरी विधानमें आस्था ज्यादा दिखाई पड़ी। मैं तो कस्बे वालोंकी बातें सुन कर ऐसा घबड़ा गया कि कइयोंसे लड़ाई होते-होते बची। किन्तु इस तरहकी लड़ाइयोंसे लाभकी अपेक्षा हानि ज्यादा संभव है, इसे मैं जानता था। लाचार होंठ बन्द किए सुन लेना ही अधिक सीधा मालूम होता। यद्यपि मैं दूसरोंकी कही बातोंका प्रतिकार न कर सका, किन्तु इस अप्रत्याशित शोककी स्थितिमें अनिताके प्रति सहानुभूति न दे सकना भी कठिन था। मेरे सामने वह खड़ी थी, मैं उसकी ओर न देख कर, धीरे-धीरे बच्चेकी मृत्यु पर कुछ कह रहा था, जिसे उसने सुन लिया—फिर न जाने क्यों थोड़ी विरक्त-सी हो उठी, चंचल भी लगी, जैसे मेरा इस समय आना उसे अच्छा नहीं लगा। बच्चेके लिए मेरे शोक-व्यक्त करने पर बोली, 'चलो, अच्छा हुआ, उसकी यह निशानी भी न रही।' मैं अवाक् उसके विवर्ण, किन्तु ज़िदसे खिंचे हुए चेहरेकी ओर देखता रह गया, मेरे कानोंको विश्वास न हुआ कि ये शब्द मेरे बच्चेके लिए उसकी माँने कहे हैं।

'अनिता !' मैं गुस्सेको रोक न सका।

वह काँपते होंठोंसे, मेरी ओर एकटक देखते हुए, जैसे कुछ कहना चाहती थी, किन्तु कुछ कह न सकी और हिचकियोंमें टूट-टूट कर रो उठी।

'तुम नहीं जानते सरोज', उसने रोते-रोते कहा—और शायद कुछ और कहती, तभी उसकी रुलाई सुनकर उसकी माँ कमरेमें दौड़ आयीं। लड़कीको रोते देख वे भी रोने लगीं और मैं चुपचाप दोनों माँ-बेटीको रोते छोड़ चला आया।

दूसरे दिन प्रातःकाल मैं अनिताके घर गया। आज फिर मेरे हाथमें केवड़ेका फूल था, जिसे मैंने अनिताको देनेके लिए तोड़ लिया था, क्योंकि आज वह जानेवाली थी। दरवाज़ेपर अनिताके पिताजी बैठे थे। मैं उनके

पास जाकर बैठ गया। बड़ी देर तक इधर-उधरकी बातें होती रहीं। 'ताऊजी !' अन्तमें मैं अपनेको रोक न सका, 'अनुको वहाँ कुछ तकलीफ है ?' मैंने पूछा। वे एक क्षण मौन मेरी ओर देखते रहे, बोले 'तकलीफ क्या है भई, लाखोंका कारबार ठहरा। खाना-पीना, कपड़ा-लत्ता इसमें कमीकी बात ही नहीं। अनु कहती थी कि शायद वह दूसरी शादी करने वाला है, तो इसमें भी क्या हुआ, बड़े घरोंके लड़के ऐसा करते ही हैं। जो दूसरी शादी नहीं करते, वे रखैलें रखते हैं। इसके लिए क्या घर-बार छोड़ देना चाहिए ? अनु कुछ पगली है, तुम उसे समझाओ, इस तरहके कामोंसे बाप-भाईकी बेइज्ज़ती होती है।'

मैं उठा तो बोले, 'यह क्या लिये हो, केवड़ा ! बड़े अच्छे !' और उन्होंने जोरकी आवाज़ देकर अपने नौकरको बुलाया, 'हरखू, अरे ये लो केवड़ा।' उन्होंने मेरे हाथसे फूल लेकर तोड़-मरोड़कर नौकरको देते हुए कहा, 'इसे कुएँमें डाल दो। मेहमान आने वाले हैं, जरा देरमें पानी खुशबूदार हो जायेगा।'

मैं तो टुकुर-टुकुर ताकता ही रह गया, कुछ कहते न बना।

ताऊके घरमें आज बड़ी भीड़ थी। गाँव भरकी औरतें इकट्ठी थीं। अनु आज ससुराल जा रही है इसलिए सारा प्रवाद मिट गया। वह फिर मासूम दुलहनके रूपमें सजायी गयी थी। किन्तु वह बोलती कम थी, इसीसे लड़कियाँ उसके पास न जाकर दूर बैठी थीं। मैं चुपचाप उसकी कोठरीके दरवाजेपर जाकर खड़ा हो गया। उसने मुझे देखा, देखती रही, और तब उसकी आँखोंमें गंगा उमड़ पड़ी—वह दौड़कर मुझसे लिपट गयी।

'सरोज, तुमने कहा, सो जा रही हूँ'—वह बोली।

'अनु, मेरी क़सम, तुम सच बताओ, तुम्हें वहाँ क्या दुःख है ?' मैंने पूछा। वह एकदम मुझे छोड़कर सामने खड़ी हो गयी। उसकी आँखें जैसे प्रतिहिंसासे जल रही थीं—बोली, 'जानते हो वह क्यों दूसरी शादी कर रहा है ?'

मैं चुप रहा।

'इसलिए कि मैं उसके कहे मुताबिक हर काम करनेको तैयार नहीं हूँ। वह पुरुष नहीं है सरोज, जो अपनी पत्नीके सम्मानकी रक्षा भी नहीं कर सकता। वह मुझे बेचना चाहता है···बदलना चाहता है, फूटे बर्तनकी तरह···'उसने बगलके आलेसे एक पत्र उठाया और बोली, 'यह है उसकी चिट्ठी, लो पढ़ लो।'

मैंने लिफ़ाफ़ेसे पत्र निकाल लिया। लिखा था कि 'तुम्हारा बाप मेरे पैरोंपर नाक रगड़ रहा है कि मैं तुम्हें बुला लूँ, क्योंकि उसकी बेइज़्ज़ती हो रही है। तुम्हें आना हो, तो आओ, लेकिन याद रखना, तुम्हें मैं पैरोंकी जूतीसे अधिक कुछ नहीं समझता। तुम्हें वह सब करना पड़ेगा, जो मैं कहूँगा। तुम्हें अपनेको मेरे समाजके लिए बदलना होगा···तुम मेरी ही नहीं, मेरे मित्रों तकके लिए मनोरंजनकी साधन हो···मेरा सारा मतलब तुम समझती होगी···सती धर्मकी दुहाई देकर तुम मेरी इच्छाओंको नहीं रोक सकती···'

मैं पत्रको आगे न पढ़ सका। अनिता मेरे मनकी लज्जा और कम-ज़ोरीको शायद जानती थी, वह एक ओर मुँह फिराकर रोती रही। मैं उसकी आँखोंके सामनेसे अपनेको छिपाता कमरेसे चला आया और वह उसी असह्य अग्निमें, उसी बदबूदार नरक-कुण्डमें, पिताकी इज्ज़त और समाजके बन्धनके नाम पर चली गयी।

मैं अब भी जब कभी अनिताके बारेमें सोचता हूँ, मेरे सामने केवड़ेके फूलोंकी याद आ जाती है। यदि इन्हें स्वतंत्र खिले रहने दें, तो जहरीले साँप इन्हें अपनी गुंजलकमें लपेट लेते हैं, क्योंकि इनकी मादक गन्ध सही नहीं जाती, और यदि किसीको निवेदित किये जायें, तो भद्र लोग उन्हें तोड़-मरोड़कर कुएँमें डाल देते हैं, क्योंकि इससे पानी खुशबूदार होता है।

बिन्दा महराज

सवेरा हुआ। सफ़ेद धूपकी एक पतली चीर आँगनकी पश्चिमी दीवारपर फैल गयी। कई दिनोंसे बीमार बिन्दा महराजने इस चटख धूपको देखा। अपने ही आँगनमें, रोज-रोज़ चमकनेवाली यह धूप, न जाने कैसी नवीन मालूम होती थी। साफ़ धुली धोतीकी तरह लटकती हुई इस धूपको देखकर बिन्दा महराजको लगा कि अब वह ठीक हो गया है। मच्छरोंसे भरे, भीगी-भीगी दीवारों वाले घरमें चारपाईपर लेटे-लेटे बिन्दा महराजका मन बिलकुल डूबने लगा था, बतखकी तरह उजली धूपको देखकर उसे बड़ी राहत मिली। उसने हाथसे हाथ छूआ, सिरको छूकर सोचा कि आज बेगानी लगनेवाली यह देह उसीकी है। यदि वह चाहे तो इसे अपनी इच्छासे घुमा-फिरा, उठा-बैठा सकता है।

चारपाईसे उठते ही बिन्दा महराज दीवारमें चिपके हुए आईनेके टुकड़ेके पास खड़ा हुआ।

'अरी मैया!' चिहुँककर पीछे हटा। कितना अजीब रूप है! हाथ-भरके लम्बे-लम्बे बाल पसीने और तेलसे लटिया गये हैं, सिरपर बीचों-बीच उसकी माँगका कृत्रिम सिन्दूर ऐसा उदास मालूम होता है जैसे जेठके दिनोंमें मरे हुए इन्द्रगोपके कीड़ोंकी पाँत हो। मूँछ-दाढ़ीके बाल भीगी बिल्लीकी छातीके भभरे रोयेंकी तरह खड़े हो गये हैं। उसकी नाकमें पीतलकी लवंग थी, आँखोंके पास कजराई उतर आयी थी, उभरी हुई हड्डियोंके कारण गाल चूसे हुए आमकी तरह लगते थे। अपने इस विचित्र रूपको देखकर बिन्दा महराजके ओठोंपर बेमानी हँसी छा गयी और उसकी आँखें विरूपताके आभाससे बदरंग लगने लगीं।

किसी तरह दाढ़ी-मूँछके बालोंको साफ़ कर जब वह फिर औरतकी शकल में आया तो आईनेमें उसका चेहरा लम्बोतरा मालूम हुआ, कान बकरी के गलेकी निरर्थक ललरीकी तरह झूलते नजर आये, जिनमें चाँदीकी नाखूनी बालियाँ पत्नीके चन्द्रमाकी तरह मालूम होतीं। उसने ताखेसे काजलकी डिबिया उठायी, कोटरोंमें धँसी आँखोंको आँजकर, उँगलीसे बची कालिखसे सिर पर डिठौना बना लिया। पपड़ी होंठ, पके गोंदकी तरह सूखे लगते थे, सो मँझली उँगलीसे रोरी छूकर उन्हें रगड़ने लगा। एक बादामी रंगकी पुरानी साड़ी पहनकर जब वह फिर आईनेके सामने आया तो जाने क्यों चौंककर हँस पड़ा।

बिन्दा महराज टाटका एक टुकड़ा बिछाकर जब अपने मकानके सामने चबूतरेपर बैठा, तो एक पहर दिन चढ़ आया था। दो घंटे पहले गाँवकी सभी प्रमुख गलियाँ बुआईके लिए जानेवाले बैल-बछरुओंकी घंटियोंकी टुन-टुन, चरवाहोंकी हट-हट, किसानोंकी दौड़-धूप और बसेराके बाद चारा चुगनेको आतुर पंछियोंके कलरवसे गुंजान लगती थीं। पर इस वक्त तो अजीब सन्नाटा चारों तरफ छाया था। भूले-भटके एकाध कौवे कहीं काँव-काँव करते निकल जाते। बनिया व्यापारी सौदा-सुलुफ खरीदनेके लिए लद्दू बैलों या टट्टुओंपर बोरेबन्द अनाज लिये बाजार जाने लगते, तो कुछ खुट-खाट हो जाती, नहीं तो फिर वही दमघोंट सन्नाटा। बिन्दा महराजको यह सब बड़ा बुरा मालूम हुआ। कहाँ वह मन बहलानेके इरादेसे बाहर आया था और कहाँ यह सूना-सूना चौराहा! न एक आदम-जात दिखायी पड़ता, न कोई चिड़ियाका पूत। वह मुँह लटकाये बैठा था।

'ए है, ई तो बिन्दोरानी हैं' पक्खेकी आड़में चिनगारीकी तरह दो आँखें दिखायी पड़ीं। बिन्दा महराज ऊपरसे जला-भुना और भीतरसे खुश-खुश उधर ताकने लगा कि पाजावेके नेवलेकी तरह अगल-बगल ताक-झाँक करता धुरबिनवा सामने आकर महराजके रूपको एकटक निहारने लगा। बिन्दा महराज उसको एकटक अपनी ओर घूरते देख बिगड़ा, 'इस

तरह क्या देखता है बे, हम क्या कोई रंडी-मुंडी है, एँ ! कुचकुचवा जैसी आँख फाड़कर मत देखा कर।' बिन्दा महराजने डिठौनेको छूकर देखा, तो वह जगह पर मौजूद था। बुरबिनवा थोड़ा और आगे बढ़ आया और अपने काले-काले दोनों हाथोंको घुटनेपर टिकाकर थोड़ा झुककर घूरने लगा, जैसे फोटोग्राफ़र काले कपड़ेमें हाथ डालकर लेंस ठीक कर रहा हो।

बिन्दा महराजने आँचल ठीक किया। झेंपते हुए मुसकराया। लौंडेकी इस अजीब हरकतसे वह कुछ घबड़ाने भी लगा। बुरबिनवा वैसे ही देख रहा था।

'अबे, तुझे हवा तो नहीं लग गयी; बाई बतास तो नहीं चढ़ा ? अरे, अभागा इस तरह क्या ताकता है रे ! बाप रे, बाईगोलेकी तरह घूमते हुए इसके ढेढ़रको देखो न !'

बुरबिनवा थककर खड़ा हो गया। रूप-दर्शनकी प्यास बुझ चुकी थी शायद। वह धीरे-धीरे खिसकता हुआ बिन्दा महराजके पास पहुँचा।

'बिन्दो रानी' वह भुनभुनाया, 'हम तुमसे परेम करते हैं।' बिन्दा महराज खिलखिलाकर हँस पड़ा, 'अरे वाह रे छोकरे, वाह ! तू मुझको परेम करता है; परेम, हीं हीं हीं हीं हीं हीं।' बुरबिनवा तब तक बिन्दा महराजके टाटके एक कोनेपर आसन जमा चुका था और हँसीके हिलकोरों के साथ कानकी ललरीमें काँपती हुई बालियोंको एकटक देख रहा था। न जाने बिन्दा महराजको क्या खयाल आया कि वह तमककर उठा और बुरबिनवाका हाथ पकड़कर झोंकते हुए चिल्लाया, 'भाग बे हरामजादा। इसका दीदा न देखो। दुनिया-भरका रोंघट पोतकर देहमें सटा आता है; चमार सियारकी जात...हुँ, कैसा जमाना आ गया है, बड़े-छोटेका कोई विचार नहीं।' बुरबिनवा खिसककर नीचे खड़ा हुआ, फिर एक क्षण घूरता रहा...सहसा खिलखिलाकर बोला—'हम क्या दीपू मिसिरसे खराब हैं, बिन्दो रानी !' और फुर्रसे गलीकी ओर भागा, क्योंकि बिन्दा महराज बड़ा-सा ढेला हाथमें उठाए क्रोधके मारे काँपने लगा था।

थोड़ी देर बाद बुरबिनवा गलीके मोड़के पास पक्खेसे पीठ अड़ाये बैठा दिखाई दिया। बिन्दा महराजने एक बार कनखीसे देखा—काला शरीर, गन्दा कुर्ता और छोटा-सा क़द, पर शरारतोंका विशाल अम्बार मनके भीतर। जाने क्यों बिन्दा महराजकी आँखें अचानक गीली हो गयीं। बुरबिनवा मुँह फुलाये बैठा था। उसे विश्वास था कि रोजकी तरह आज फिर बिन्दा महराज उसे पास बुलायेगा, पुचकारेगा और फिर गलीके लड़कोंके साथ खेलनेकी सलाह देकर भीतर चला जायेगा। किन्तु जाने आज बिन्दा महराजको क्या हो गया है, वह तो बोलता ही नहीं। बुरबिनवा बड़ी देर तक आस लगाये बैठा रहा, किन्तु महराज जब न उठा तो वह भुनभुनाया, 'हिजड़ा साला' और घृणासे महराजको घूरते हुए एक ओर चल दिया।

बिन्दा महराज एक क्षण इधर-उधर देखता रहा, उसके पीले लंबोतरे चेहरे पर पक्खेकी दीवारकी काली छाया नाच रही थी। कितनी उदास, नीरस थी वह छाया, जो चढ़ते हुए सूरजके साथ अपनी सारी अवान्तर लंबाई समेटकर छोटी और गाढ़ी होती जा रही थी—केन्द्रित। दुनियाके सारे नाते-रिश्ते केवल पुरुष और स्त्रीसे हैं...विपरीत लिंगोंका आकर्षण, एकके दायरेकी तमाम वस्तुएँ दूसरेसे उसी प्रकार संबद्ध। बिन्दा महराजका दुनियामें कोई रिश्ता नहीं, हो भी कैसे, न तो वह मर्द है न औरत। व्रत-उपवास, कथा-पुराणके उत्सवोंमें नाच-गानसे उपजी कमाईको राख बनाकर उसे क्या मिलता—पीड़ा, जलन। प्रसाद लेने तकके लिए भी तो वही आते जिन्हें मीठी चीजोंसे कभी भेंट न होती। मनकी ऊपरी सतह पर इनकी बात-चीत निकटताकी एक लहर जगा देती, केन्द्रकी परिधि बढ़ती...बढ़ती जाती और एक लहरकी उठान गिरकर रेखा, असूच्य रेखामें, बदलकर लीन हो जाती।

'मैं तुमसे परेम करता हूँ, बिन्दो रानी' बुरबिनवाने आज मर्मपर बान मारा था। बिन्दा महराज एक क्षणके लिए बिलकुल व्यथितकी तरह

ताकता रह गया। सहसा उसे विश्वास भी न हुआ कि चमारके उस गन्दे-से लड़केने यह बात जानकर कही है।

तब बिन्दा महराजको 'बिन्दिया' कहलाना ज्यादा अच्छा लगता था। पतला-सा शरीर, छरहरी देह, लाल रंगकी चूनर और बूटेदार छींटकी अधबहियाँ। बिंदियाके सिरकी चमकीली बिन्दी सूरजकी ज्योतिपर चकमक की तरह जल उठती। कलाईमें लाल-लाल चूड़ियाँ, सिरके लम्बे-लम्बे बाल दोमुँही दो चोटियोंमें गुँथे होते, जो उसकी छाती पर गेंदेके बने हुए कृत्रिम उभारपर झूलती रहतीं। बिंदिया चलती तो गाँवकी गलियोंमें हँसी, ढिठाई और मीठी चुटकियाँ गिरोह बाँधकर चलने लगतीं। शरीरको औसतसे ज्यादा स्त्रैण ढंगसे लटकाते हुए जब बिंदिया ठुनकती तो कब्रमें पैर लटकाये बूढ़ों तककी मूँछोंके बाल फरफराने लगते। बिन्दा महराजके साथ उसके चचेरे भाईका दस-बारह सालका लड़का करीमा ढोलक लेकर चलता। लड़का बड़ा शोख और खुशमिजाज़ था। बिन्दा महराज उसे प्राणोंसे ज्यादा मानता। कोई तनिक छेड़ देता या कुछ कह देता तो वह करीमाके लिए झगड़ने तकको तैयार रहता। उस दिन ठाकुरके घर नवजात बच्चेकी बरही थी। गाँव-भरकी लड़कियाँ; बूढ़ी औरतें बिन्दा महराजका नाच देखने इकट्ठी हुईं। खासा मजमा था। एक-से-एक चुलबुलाती औरतें और उनके बीच बिन्दा महराज। करीमाके सिर पर पाँचगज़ी लाल साड़ीकी पगड़ी बँधी थी और कमरमें ढोलक, जिसे वह चलते नाचकी गत पर बजा लेता था। बिन्दा महराज पैरोंमें घुँघुरु बाँधकर खड़ा हुआ, तो लड़कियोंकी आँखोंमें गूलर फूलने लगे, बूढ़ी औरतें अपनी हँसी छिपानेके लिए होठों पर आँचल रखने लगीं, मुँहज़ोर नौकरानियोंने बिन्दो रानीको आँचलके गेंद छिपा लेनेकी सलाह दे ही दी। बिन्दा महराज इन मज़ाकोंका उत्तर अत्यन्त खुले और अश्लील मज़ाकोंसे देता जाता। सब सह जातीं, कौन किससे कहे। बिन्दा महराजका गला पुरुष-कंठकी तरह मोटा था, पर सधा। वह गा रहा था :

मोरी धानी चुनरिया इतर गमके
धनि बारी उमरिया नइहर तरसे।

करीमाने ढोलक सँभाली। कबूतरकी तरह घुटक कर पीछेसे बोला, 'कइसे तरसे राजा!' लड़कियोंमें खिलखिलाहट छा गयी। ज़ोरका ठहाका लगा, बूढ़ियाँ लोट-पोट होने लगीं। बिन्दा महराजके घुँघुरुओंकी छमक और पगड़ी वाले करीमाके ठेकेने समाँ बाँध दिया था। ठाकुरके आंगनमें इस विचित्र संयोगने नये रसकी सृष्टि कर दी। बिन्दा महराजने अन्तिम पंक्तियाँ गायीं :

'कलियाँ में चुन-चुन सेज लगायो
मोरा सूतने वाला बिदेस तरसे...'

ढोलक चलते पर बज रही थी। एक विचित्र तरंग, सिसकारियाँ, छुनछुनाहट···बीच-बीचमें हथेलीके ज़ोर-से घुम-घुमकी आवाज़ निकालते हुए करीमा की घुटक : 'कइसे बाबू, कइसे राजा'···गोरे, पीले रंग लाल होने लगते। हँसीसे हृत्कम्पके कारण आँचल तक थिरकने लगते, बिन्दा महराज सौन्दर्यकी इस जाग्रत अवस्थाको सपनेकी तरह देखता रहता। हँसता, नक़ल करता, डूबता, उतराता मालूम होता, किन्तु कितना अछूता, कितना निर्लिप्त! उस दिन ठकुरानीने छहगज़ी मोरपंखी किनारी वाली पीली साड़ी, भर सूप नाखूनी संजीरेके चावल और चाँदीका एक रुपया नेगमें देकर बिन्दा महराजका 'खोईछा' (आँचल) भर दिया था।

शामको घर लौटते समय गलीमें दीपू मिसिर मिल गये थे। घुटने तक काछेदार धोती, मोटियाकी अधबहियाँ, और सिर पर आधे इंचके सुईनुमा कड़कड़ाते बाल। दीपू मिसिरको लंघी लगानेकी आदत थी। छोटा हो या बड़ा, लड़का हो या जवान, यदि कोई आदमी दीपू मिसिरको मिलता, तो उसे प्रणाम व आशीर्वाद न देकर वे पास पहुँचते और उसका हाथ पकड़कर पूछते, 'का गोइयाँ मज़ेमें हो न!' और चटाक बगली खींचकर उसके पैरमें लंघी मार देते। आदमी होशियार रहा तो सँभल गया

नहीं तो लड़खड़ा कर चारो खाने चित्त गिरने वालोंको जरूरत समझ कर वही सम्हालते, और ठहाके मार कर कहते रहते, शाब्बास रे शाबाश ! मेरे मिट्टीके शेर जिओ, जिओ, क्या हाथ दिखाया है तूने गोइयाँ !' गोइयाँ उनकी ओर हक्का-बक्का हो कर ताकते रह जाते। गलीमें भीड़ लग जाती और तब मुसकराते हुए चुप-चाप किसीसे बिना कुछ कहे गोइयाँको अपनी राह चल देना ही मौजूँ जान पड़ता।

बिन्दा महराज अपनी चूनर सम्हाले, पीठ पर ढोलक लटकाए, कमर को हवामें लचकाता, बल-पै-बल खाता चला आ रहा था कि मिसिरने देख लिया। चबूतरेसे कूद कर सामने आ गये। दोनों हाथ फैला कर भालू की तरह कूद-कूद कर वह उसका रास्ता रोकने लगे। वह बायें ठुनककर चलता तो मिसिर बायें उछलते, दाहिनी ओर मुड़ता तो मिसिर कूदकर दाहिनी ओर आते।

'देखो मिसिर,' वह नज़ाकतसे बोला, 'हमको छेड़ो ना।'

दीपू मिसिर 'हो-हो' कर हँसे—'अरी वाह रे, मेरी छप्पन छूरी, ऐसे ही चली जाओगी' और उन्होंने चटाकसे उसकी कलाई पकड़ ली।

'हाय री मैया' बिन्दा महराज डरसे चीखता हुआ गिड़गिड़ाया, 'मेरी कलाई मुरक जायेगी, मिसिर छोड़ दो ना।'

'तो क्या हुआ बिन्दो रानी' मिसिर भी स्वरका अनुकरण करते हुए बोले, 'हम दवाई करेंगे ना !' तबतक दीपू मिसिरने हाथ पकड़कर बगली खींची और चटाक बिन्दा महराजके पैरमें लंघी मार दी। महराज तो बिलकुल अनजाना था, लड़खड़ा कर ढोलक समेत मुँहके बल गिरनेको हुआ। करीमा ज़ोरसे रोने लगा, पर दीपूमिसिरने बीचमें ही सम्हाल लिया और वे आदतके मुताबिक हो-हो करते हुए उसे 'शेरो बब्बर'के खिताबसे विभूषित किये जा रहे थे।

बिन्दा महराज थोड़ा रुष्ट हुआ तो मिसिर बोले, 'अरी वाह री बिन्दो रानी, मैंने तो समझा कि तुम जरूर मज़बूत होगी' और फिर

मिसिर वाजिदअली शाहका पुराना किस्सा सुनाने लगे। बोले, 'एकबार वाजिदअली शाहके मन्त्रीने सलाह दी—हुजूर, एक हिजड़ोंकी पलटन तैयार की जाये और फिरंगीसे भिड़ा दिया जाये। मज़ा आ जायेगा। कितने मज़बूत होते होंगे ये लोग, न औरत न मर्द, लड़का पैदा करना होना नहीं, देह कसी-की-कसी रह जाती है...नबाव मान गये। पाँच हज़ार जनखोंकी पलटन तैयार हुई। लाम पर भेज दिया गया। उधरसे जब फटाफट गोलियाँ छूटीं तो बस बहादुरोंकी पलटन बन्दूक फेंक-फेंक कर 'हमनीसे का मतलब रे मैया' कहते हुए जो भगी तो फिर मुड़ कर देखा भी नहीं।' श्रोता-गण मिसिरके किस्से पर सूखे रेंड़की तरह खड़खड़ाने लगे थे। बिन्दा महराजको जानेको देर हो रही थी, 'अच्छा, अच्छा, हुआ, बड़े विदमान हो' वह बोला, 'हमें घर जानेकी जल्दी है, लाओ, एक ठो बीड़ी पिलाओ'।

'एँ' बीड़ीका नाम सुनकर मिसिर चौंके—'पहिले चुम्मा गलकटौवल' फिर पाकिटसे बीड़ी निकालकर बोले, 'एक बीड़ीमें क्या है रानी' तुम्हारे लिए तो कलेजा हाजिर है, बाकी हाँ...कभी-कभी हमें भी याद कर लिया करो।' बिन्दा महराजने बीड़ी ले ली और जलाकर पीने लगा। धुएँको अपने होठोंसे ढकेलते हुए वह तिरछी आँखोंसे एक टक मिसिरको देखता रहा। धुएँकी गुँजलक उसके पतले लाल होठोंके साथ बहुत सुन्दर लगती। सहसा मिसिरको हाथ जोड़कर बोला, 'अच्छा मिसिरजी, पालागीं।'

'जिओ बाबू, जिओ!' मिसिर बोले। बिन्दा महराज छमकते हुए जाने लगा और वे उसकी ओर देखते मुसकराते रहे।

नीचे सूरजकी दोपहरी किरणें नीमकी पत्तियोंमें उलझने लगी थीं। बिन्दा महराज उसी प्रकार अपने सपनोंकी भूलभुलैयामें खोया निश्चेष्ट बैठा था। हरी पत्तियोंसे छन-छन कर आती हुई धूप-छाहीं रोशनी उसके पीले चेहरे पर काँप रही थी। आँखोंकी कालिमा पर काली छाया, सूखे होठों पर पीला प्रकाश—अस्थिर चित्तकी डोलती रोशनीकी यह लुका-छिपी।

यही जीवन है बिन्दा महराजका। प्यार उसकी आत्माकी प्यास थी, किन्तु परिणामहीन प्रेमकी क्रूरता वह समझ नहीं पाता। ज़रा-से आकर्षणसे चित्त चंचल हो जाता। मनोरंजनको प्रेम समझा तो नशा छा गया, हाथ फैला कर बटोरना चाहा तो हथेलियाँ टकरा गयीं। प्रेम शब्द उसके लिए केवल शब्द था, निर्जीव शब्द, रूढ़ अर्थ।

'हिजड़ा' उस दिन बापके कहे शब्दोंको करीमा दोहराने लगा, 'मैं तेरे साथ शोहदा नहीं बनूँगा।' बिन्दा महराज आहत अभिमानका बोझ उठाये खड़ा था। उसकी अपलक आँखें जड़ित शीशेकी तरह गतिहीन, धूमिल। उसे विश्वास कैसे होता कि ये शब्द करीमाके हैं। बड़ा स्नेह संचित था मनमें, जो आँखोंमें उतर आया।

'मैं तुझे शोहदा बनाता हूँ बे, हरामी।' उसने चटाकसे एक थप्पड़ करीमाके गाल पर जड़ दिया और खुद ही रोने लगा।

उसी दिन लड़-झगड़ कर उसके भाईने घरसे निकाल दिया। था ही कौन उसका अपना, जो पैरोंमें रेशमी बेड़ियाँ डालकर रोक रखता। माँ-बाप एक प्राण-हीन शरीर उपजा कर चले गये। मर्द होता तो बीबी-बच्चे होते, पुरुषत्वका शासन होता, स्त्री भी होता तो किसी पुरुषका सहारा मिलता, बच्चोंकी किलकारियोंसे आत्माके कण-कण तृप्त हो जाते। बिन्दा महराजने ढोलक उठायी और प्यासी आँखोंसे अपने ही शरीरको देखता गाँवसे बाहर हो गया। वह सीधे ठाकुरोंके इस गाँवमें चला आया था। उसे उम्मीद थी कि नाच-गा कर, भीख माँग कर जिन्दगीके शेष दिन गुज़ार देगा।

बिन्दा महराजको इस नये गाँवमें आये तीन-चार महीने ही बीते थे कि गाँवके एक छोरसे दूसरे छोर तक उसकी मुहब्बतकी कहानी फैल गयी। चौराहे पर, गलियोंके मोड़ पर, पनघट और कुओंकी जगत पर, सर्वत्र दीपू मिसिर और बिन्दा हिजड़ेकी मुहब्बतकी चर्चा होने लगी। बिन्दा महराज सुनता तो खुशीसे मारे उसके चेहरे पर ताँबिया लाली छा जाती। कभी

शर्मसे गर्दन झुकाकर सोचने लग जाता—क्या सचमुच ऐसा संभव है ! क्या उससे भी कोई मुहब्बत कर सकता है। फिर वह खुद ही इस प्रवंचनाके बोझको बेरहमीसे फेंक कर हँसने लगता। हाँ, वह मुहब्बत करता था, सीधा, निश्छल प्यार, किन्तु दीपू मिसिरसे नहीं, उनके दो-ढाई वर्षके छोटे-से बच्चेसे जो दिन-भर दीपू मिसिरकी अँगुली पकड़ कर खड़के सफेद गुड्डेकी तरह डुगुर-डुगुर घूमता रहता।

एक दिन शामके वक्त दीपू मिसिर जब इधरसे निकले तो बिन्दा महराजके खँडहरके पास खड़े हो गये। बिन्दा महराज लड़केको खुश करनेके लिए तरह-तरहकी मुद्राएँ बनाता रहा, कभी भेंड़ेकी तरह 'व्याँ-व्याँ करता, कभी सियारकी तरह 'हुआँ-हुआँ'। लड़का तालियाँ पीट-पीट कर हँसता रहा। सहसा दीपू मिसिरकी ओर मुड़कर बोला, 'बाबू जी, बूआ टमाटरकी तरह लाल पतले होंठ 'पू' करनेकी शकलमें सिमिट कर गोल हुए फिर हँसीमें बिखर गये...'बूआ'। बिन्दा महराजने लड़केको छातीसे चिपका लिया, मिसिरको यह सब अच्छा नहीं मालूम हुआ, पर कुछ बोले नहीं। अभी हालमें उनकी बहन मायके आयी थी। मुन्नाको हँसाने-बहलानेके लिए वह भी ऐसे ही मुँह बनाती, हाथ हिलाती। न जाने क्या साम्य मिला मुन्नाको, कि वह बिन्दा महाराजको बूआ कह बैठा। इस विचित्र संबोधनसे बिन्दा महराजका रेतीला मन अंकुरित होने लगा। वह बाहर जाता तो लड़केके लिए बतासे, रेवड़ियाँ, मिठाई, कुछ-न-कुछ जरूर लाता। मिसिर भुनभुनाते, लड़केको घूर-घूर कर कुछ न-लेनेका इशारा करते, किन्तु लड़का नहीं मानता और बिन्दा महराजका ममत्त्व इतना वेगवान होता कि मिसिरके इशारोंका लंगर उखड़ जाता।

नीमकी डालियाँ मंजरियोंसे सुवासित हो जातीं, पीली-पीली निबकोरियोंसे चबूतरा भर जाता, बिन्दा महराजके मनमें एक अजीब क़िस्मकी सुरसुरी होने लगती। वह सुबहसे शाम तक आँखें बिछाये दीपू मिसिरके आनेका इन्तज़ार करता रहता, उसकी इस बेखुदी पर लौंडियाँ व्यंग्य करतीं, कुछ

नौजवान छोकरे भी चिढ़ानेके लिए सीटियाँ बजाते गुज़र जाते, किन्तु बिन्दा महराज पर इसका कोई असर न होता। कई दिनोंसे मुन्ना न आया, महराजके मनकी पीड़ा छिपाये नहीं छिपती। शामको मालूम हुआ कि मुन्ना बीमार है। महराजके चेहरे पर शाम उतर आयी। वह चुपचाप गाँवसे बाहर निकल कर कालीजीके मन्दिर तक गया और उसने चौखट पर सिर पटक दिया। ज़िन्दगीमें पहली बार उसे कोई इच्छा लेकर देवताके पास आना पड़ा था। जवाकुसुमके दो फूल, कुछ बतासोंका प्रसाद लेकर वह लौट आया। कई बार इच्छा हुई कि वह प्रसाद मुन्नाको दे आये, किन्तु न जाने क्यों लाजके मारे वह न जा सका। शाम गहरी हो गयी, तो अँधेरेने मनमें साहस पैदा किया और वह दबे पाँव लोगोंकी आँखें बचाता मिसिरके घरकी ओर चल पड़ा, दरवाज़े पर दस्तक दी।

'कौन ?'

वह कुछ बोल नहीं सका।

दरवाज़ा खुला। बगलमें मिसिर थे और सामने मिसराइन खड़ी थीं। वे सिंहनींकी तरह भूखी आँखोंसे उसकी ओर देख रही थीं, सहसा वे पीछे हटीं और खटाकसे दरवाज़ा बन्द कर लिया। 'यह क्या कर रही हो मुन्नाकी माँ...' मिसिरने शायद कुछ और कहा पर सुनाई न पड़ा। महराज कुछ कहनेको हुआ, किन्तु शब्द जड हो कर आहत साँसोंमें बिखर गये। वह कोलतार पुते काले दरवाज़ेकी ओर भय और निराशासे देखता रहा, फिर चुप-चाप लौट पड़ा। हाथमें जवाकुसुमके लाल फूल मणिधर सर्पकी तरह लहरा रहे थे, वह उन्हें मुट्ठीमें दबाये तेज़ीसे चलता गया। घर आकर चारपाई पर गिर पड़ा और बहुत देर अँधेरेमें घूरता रहा, मिसराइनकी दाहक आँखोंका मर्म उसकी समझमें कुछ भी न आ सका।

सुबह मुन्नाकी मृत्यु हो गयी।

बिन्दा महराज आँखें फाड़ कर पागलकी तरह मिसिरके घरकी ओर जाते हुए लोगोंको देखता, कोई कुछ कहता नहीं, सब शोक-मग्न, चुप।

'हिजड़ेके साथका असर है भाई···सोने जैसा लड़का सो गया।' हवामें सहानुभूति और आक्रोशके शब्द टकराने लगे।

'डायन' औरतोंकी आवाज़ नागिनकी सिसकारीकी तरह काँपती हुई सुनाई पड़ती, 'लड़केको छातीसे लगा लिया था।'

बिन्दा महराज कलेजेके दर्दको मुट्ठियोंमें पकड़नेकी कोशिश कर रहा था। घरके अँधेरे कोनेमें 'बूआ' की प्रतिध्वनियाँ उठतीं, उसके हृदयके भीतर बर्फ़का टोका कसकने लगता, वह विपतत बाणसे बिंधे आहत पक्षीकी तरह तड़पता रहा। उसे लगता कि वह सचमुच डायन है, आत्मभक्षी। उसके संसर्गमें आकर कोई सुखी नहीं रह सकता, कोई नहीं।

बिन्दा महराज उसी चबूतरे पर बैठा था। उसने तीखी साँस ली। सारा शरीर जाड़ेसे काँपने लगा। भयंकर बुखारका यह दूसरा दौर था। वह चुपचाप टाट समेटकर आँगनसे होता हुआ कमरेमें पहुँचा और चारपाई पर लेट गया। रज़ाई खींच ली। शरीरमें दर्द-भरी कँपकँपी, भट्ठीके धुँएकी तरह दमघोंट कमरा, डूबती-उतराती आहत आत्मा। ताप बढ़ता जा रहा था। सिर फटने लगा। भयंकर पीड़ासे वह कराह उठा।

'फिर बुखार आ गया, बिन्दा चाचा।' कह कर चिढ़ानेकी गरज़से आये हुए घुरबिनवाने जब कराहनेकी आवाज़ सुनी, तो भीतर आ गया।

ठंडी-ठंडी पतली अँगुलियाँ सिर पर घूम रही थीं। ज्वरसे आक्रांत दग्ध शरीर, बिन्दा महराजको लगा कि जेठकी तपी रेतमें सावनकी फुहारें बरस रही हैं, हजारों अँखुए; मरकती पत्तियों वाले अँखुए फूट रहे हैं, सदाकी बंजर धरतीको भेद-भेद कर।

आँखें खोलकर बिन्दा महराजने देखा, घुरबिनवा है। मासूम, शीतल महराजकी दहकती, तपती छाती उसे खींचकर चिपका लेनेके लिए तरस उठी। किन्तु जाने क्या सोचकर वह जलती आँखोंसे घुरबिनवाकी ओर

देखते हुए बोला, 'अबे तू फिर आ गया हरामी! मैंने कहा था न, कि पास मत आइयो' और पागलकी तरह चिल्लाया, 'भाग बे भाग, ताकता क्या है, चला जा यहाँ से।'

घुरबिनवा भयके मारे दो क़दम पीछे हट गया और सकपकाया-सा भयाक्रान्त दबी आँखोंसे बिन्दा महराजको देखता बाहर हो गया।

महराज मुसकराया, व्यथा-भरी हँसी जो ज्वरकी पीड़ासे झुलसकर दुपहरियाकी फूलकी तरह बिखरने लगी थी।

कहानियोंकी कहानी

प्रेमचन्द्रकी 'बूढ़ी काकी', 'प्रसाद' की 'मधुवा', अज्ञेयकी 'रोज', जैनेन्द्रकी 'जाह्नवी', और यशपालकी 'तुमने क्यों कहा कि मैं सुन्दर हूँ' कहानियाँ याद होंगी। वे कहानियाँ ही स्वयं इस कहानीमें पात्र रूपमें आयी हैं।

बूढ़ी काकीकी उमर साठके पार पहुँच गयी थी। देह शिथिल हो गयी थी, मन विरक्त। पोपले मुँहपर झुर्रियाँ झूल आयी थीं। दिन भर ओसारेमें बैठी, लाल रंगकी मटमैली गोमुखीमें तुलसी मालापर वह नाम-जप किया करतीं। टोले-महल्लेके लड़के आकर उन्हें घेर लेते और राजा-रानीकी पुरानी कहानी सुना करते। उत्सव-पर्वोंसे काकीको विराग हो गया था, पर ताजी पूड़ियोंकी गन्ध और मिठाईकी महक उन्हें अब भी परेशान कर देती।

आज सुबहसे ही बूढ़ी काकी बहुत खुश थीं। सिर्फ़ इसलिए नहीं कि उनकी दायादीके घर ब्याह-भोज था, बल्कि इसलिए कि उनके भतीजे डाक्टर विवेकराम कलकत्तेसे इस उत्सवमें शामिल होनेके लिए आये थे और साथमें उनकी तीनों लड़कियाँ माया, रोज़ और जाह्नवी भी पूरे बारह साल यानी एक युगके बाद गाँव आयी थीं।

पोखरेसे स्नान करके बिना किनारीकी धुली साड़ी पहनकर जब बूढ़ी काकी ओसारेमें आकर बैठीं तो उन्हें देखकर जाने क्यों तीनों पोतियाँ खिलखिला पड़ीं। 'एकदम सान्टा क्लॉज' ! माया हँसते हुए बोली, 'दादी तुम तो बिल्कुल 'नन' मालूम होती हो, एकदमसे 'नन' !'

माया २६ वर्षकी युवती थी। ज़रा गुदकाली और ठिगनी। उसके चौड़े मुखपर काफी चिकनाहट थी, किन्तु उभरी हड्डियोंके कारण चेहरा रूखा-सूखा मालूम होता था। आँखें धँसी हुईं पर पानीदार थीं। जब वह दस बरसकी थी तभी उसकी शादी हो गयी थी। उस समय तक डाक्टर अपने परिवारके साथ कलकत्ते नहीं गये थे। उनके पिता सनातनी ब्राह्मण थे और उन्होंने 'गौरी' कन्याके पवित्र दानके पुण्य द्वारा सदेह स्वर्ग प्राप्तिकी आकांक्षासे दस वर्षीया पोतीका ब्याह निःसंकोच कर दिया था।

मायाकी बात सुनकर बूढ़ी काकी हँसी, बेवकूफों जैसी निरर्थक हँसी! पोतीकी बात उनकी समझमें खाक-पत्थर नहीं आयी। बोलीं : 'तू बीमार तो नहीं थी रे सुन्दरी! तेरा चेहरा बड़ा पीला-पीला लगता है।'

मायाको गाँवके लोग सुन्दरी कहा करते। बचपनमें वह बड़ी दुबली-पतली और मुई-मुई-सी थी। रंग भी उतना साफ़ न था। चिढ़ानेके लिए शरारती लड़कियाँ उसे छुछूँदरी कहा करतीं। वह इस विशेषणको सुनकर आग-पानी हो जाती। लड़ती-झगड़ती ; और जब पार न पाती तो रो-रो कर दादासे शिकायत करती। बूढ़े पंडितजी उसे पुचकारते-दुलारते और कहते : 'कौन है जो तुझे ऐसा कहता है, आ तो ज़रा देखूँ! वाह मेरी बिटिया रानी कितनी सुन्दरी है!' माया खुश हो जाती और सुबुकना छोड़कर मुस्कराने लगती। गाँव वाले उसकी यह कमज़ोरी जानते थे। इसलिए सभी उसे प्रसन्न रखनेके लिए सुन्दरी कहा करते। और वह इस कथन को सत्य मानकर फूली न समाती!

काकीके सवालसे जाने क्यों वह परेशान-सी हो गयी। चेहरा एकदम उतर आया और वह कुछ सोचती हुई-सी धरतीकी ओर देखने लगी।

'हाँ, बीमार थी दादी', रोज़ बोली : 'पिछले दिनों तो बहुत कमज़ोर हो गयी थी। पिताजीने पहाड़ भेज दिया था। जबसे लौटी है जाने क्यों परेशान-सी ही रहती है। बीमारीकी बात छेड़ने पर…'

'शट अप,' माया चीखकर बोली : 'तुमसे तफ़सील कौन पूछ रहा है ?'

रोज़ने भीत नेत्रोंसे उसे देखा और एकदम चुप हो गयी। बोलते-बोलते चुप हो जाना उसकी आदत थी। उसके निर्भाव चेहरे पर एक भी रेखा नहीं बची थी, ज़रा भी आक्रोश न था—जैसे कुछ हुआ ही नहीं। वह अपनेमें ही खोयी-खोयी-सी काकीकी उजली साड़ीकी ओर देखने लगी। उसकी मोतिया आभा उसे बड़ी शीतल और पवित्र लगी।

'जाने भी दो ये बातें भई। कुछ कामकी बातें करो !' नन्हीं जाह्नवी पुरनिया जैसा विश्वासपूर्ण मुँह बनाकर बोली : 'हाँ दादी, एक कहानी सुनाओ कोई। मनको कुछ फ़ुर्सत मिले।'

बूढ़ी काकी मुस्करायीं : 'क्यों री जन्हो, तू क्या अब भी कहानी सुनती है बिटिया ! ओः हाँ !', काकीके पोपले मुँह पर हँसीका ज्वारभाटा आ गया, 'इन दोनोंको अब कहानियोंसे क्या काम ! इनकी तो शादी हो गयी। पर तू क्यों नहीं व्याह कर लेती रे, तू भी तो बड़ी हुई...'

जाह्नवीके गाल टमाटर हो रहे थे। बिखरे केश बरजोरी उसके मुख पर मँडराने लगते। माया और रोज़ खामोश बैठी थीं। काकीको वातावरण हाथसे फिसलता लगा तो सँभालते हुए बोलीं : 'अच्छा जन्हो, ले, तुझे एक अच्छी-सी कहानी सुनाती हूँ।'

माया एकाएक बोली : 'हटाओ भी दादी, कुछ असलियतकी बात करो। क्या वाहियात कहानी-सहानी लेकर बैठ गयीं ! ये तो बताओ, इस साल इधर पैदावार कैसी है ? लोग-बाग बड़े उदास नज़र आते हैं, जैसे किसीने इनके मनकी सारी खुशी छीन ली हो। कितने दुःखी हैं बिचारे ये गाँवके लोग।'

'चुप भी रहो दीदी', रोज़ और जाह्नवी एक साथ बोलीं : 'तुम व्यक्तिगत बातोंमें भी 'इकोनॉमिकल प्रॉब्लेम' लेकर क्यों बैठ जाती हो। कहाँ तो

हम कहानी सुननेके लिए सवेरे-सवेरे बिस्तरा छोड़कर आये, कहाँ तुम ग़रीबीका पचड़ा लेकर बैठ गयीं !'

माया मुस्करायी : 'हाँ ये सब तो ग़रीबीका पचड़ा है। अभी पाँव धरती पर नहीं पड़े हैं तब तक बातें करलो, एक दिन तो फिर नून-तेलका भाव मालूम होना ही है। खैर, आइ बिलीव इन डिमोक्रैसी, गो ऑन दादी, कहानी कहो, शुरू हो !'

बूढ़ी काकीको लड़कियोंकी झड़पका कोई कारण मालूम हुआ न परिणाम। उन्हें लगा कि यह कोई पुराना झगड़ा है जिसे याद करके वे लड़ गयीं हैं, अब चुप हों तो कहानी शुरू करूँ कि मायाने उन्हें अचानक ऑर्डर दे दिया। चिहुँक कर काकी सुनाने लगीं : 'एक था राजा······'

'ओफ्-ओः, क्या मुसीबत है ! अरे दादी कोई कहानी ही कहनी है तो किसी आदमी-वादमीकी कहो, यह भी क्या राजाकी कहानी ले बैठीं !'

'सुनो दीदी', जाह्नवी रूँआसी होकर बोली : 'तुम्हें नहीं अच्छा लगता हो तो जाकर पाब्लो नेरूदाकी कवितायें गाओ, लेकिन हम तो यही कहानी सुनेंगी। राजा-रानी आदमी नहीं होते क्या ? उनकी ज़िन्दगीमें ऐसा कुछ नहीं होता क्या जो हमें छुये, जिसमें हम भींग सकें, डूब सकें···?'

'अच्छा भई अच्छा' माया हँसकर बोली 'च् च् च् चुप हो जा बेबी, चुप हो जा ! हाँ दादी तो उस राजाको क्या कुछ हुआ-हवाया, जल्दी सुना जाओ !'

काकी बोलीं : 'एक दिन राजा शिकार खेलने निकला। घूमते-घामते एक घने जंगलमें पहुँचा। सिर पर सूरज तप रहा था। हवा बन्द थी, एक पत्ता भी नहीं हिलता। राजाको बड़ी प्यास लगी थी, घोड़ा भी थककर चकनाचूर था। एक पेड़ पर चढ़कर उसने देखा, घनघोर जंगलके बीचोंबीच साफ़ पानीका एक तालाब है। वह आनन-फ़ानन उतरा और घोड़े पर चढ़कर एड़ लगा दी। पवनपंखी घोड़ा बात की बातमें तालाबके पास पहुँच गया। राजाने हाथ-मुँह धोकर पानी पिया और सुस्तानेके लिए

एक पेड़की छाँवमें बैठ गया। सहसा एक दैवी गन्धसे दिशायें गमगमा उठीं। राजा भौंचक्का होकर देखने लगा। मुड़कर देखा, तो क्या देखता है कि एक परम सुन्दरी अप्सरा सहेलियोंके साथ चली आ रही है। उसके पास भेड़के दो बच्चे हैं। एकको छातीसे चिपकाये है, दूसरेको रस्सीसे बाँधकर साथ लिये है।

'भेड़के बच्चे!' माया हँसी 'वाह रे बेवकूफ़! अरे वह कोई पहाड़ी औरत रही होगी दादी, उस मैदानी काले-कलूटे राजाने उसे अप्सरा ही समझ लिया होगा!'

रोज़ जो एकदम शान्त बैठी थी, लम्बी साँस खींच कर बोली, जैसे हृदयमें जमा बर्फ़का पहाड़ उकील रही हो: 'तो वह अपनी छातीसे भेड़का बच्चा चिपकाये थी न दादी! हूँः, ठीक तो है। मुलायम रोएँके स्पर्श-सुख से थकनसे सुन या अतृप्तिसे तने हुए स्नायुओंको राहत मालूम होती है। इसीलिए तो विदेशोंमें विदुषी औरतें बिल्ली या कुत्ता पालती हैं, या गिलहरीके बालका कोट या स्कार्फ़ पहनती हैं।'

बूढ़ी काकीको इन पागल पोतियोंकी बातों पर बड़ा आश्चर्य होता। जाने क्या-क्या सोचकर माथा खराब करती हैं? न जाने कैसी-कैसी बातें करती हैं—एकदम अनबूझ पहेली? रोज अपनी बात खत्म करके पहलेकी तरह ही शान्त हो गई थी, किंचित् आघातसे उठी लहर वृत्तके विस्तारमें खो गयी थी।

'तो सुनती हो न जन्हो बेटी,' दादीने कहना शुरू किया। जन्हो ही ऐसी थी जो अबतक चुपचाप बिना कुछ पूछे दादीकी कहानी सुन रही थी, या कि सोच रही थी। इसलिए लगनका श्रोता देखकर दादीने उसीको सम्बोधित करके कहा: 'तो राजा उस गन्धकी डोरसे खिंचा हुआ, भौंरेकी तरह सुध-बुध बिसार कर उधर ही को चला। दोनों एक दूसरेको देखते रह गये।'

'लव ऐट फ़र्स्ट साइट!' मायाके चौड़े चेहरेपर व्यंग-हासकी लहरें

काँपीं, 'तारक मैत्री इसे ही कहते हैं। एकदम एक्सीडेंटल! बुर्जुआ कहानियोंमें एक ही पिटी-पिटाई थीम रहती है। गोया उनके पास 'लव' के अलावा कोई काम नहीं। और फिर इस तरह एकदम देखनेकी क्या उपयोगिता है भाई? पागलकी तरह ताकनेसे लाभ? कुछ बातें-बातें करते।'

'मेकेनिकल!' जाह्नवी धीरेसे बुद-बुदायी। मायाका बार-बारका हस्तक्षेप उसे एकदम पसन्द न था। इस लटकेको तोड़ देनेकी ग़रज़से वह बोली: 'तुम हर बातमें यह उपयोगिता क्यों ढूँढ़ने लगती हो? क्या तुम बता सकती हो कि आसमानका रंग नीला न होकर पीला होता तो क्या बिगड़ जाता? या कि तुम्हारे सिरके बाल काले न रहकर हमेशा सफ़ेद ही होते तो क्या हर्ज हो जाता? बेमौसमके बादलोंकी कोई उपयोगिता है? इन्द्र-धनुष न भी बनता-बिगड़ता तो क्या कुछ हो जाता किसीको? दीदी, जब ईश्वरकी सृष्टिमें ही हमेशा उपयोगिता नहीं दिखाई पड़ती, तो तुम मनुष्यके हर कामको उपयोगिताकी तराज़ूपर क्यों चढ़ाने लगती हो? और फिर यह भी तो हो सकता है कि जिस काममें तुम्हें कोई उपयोगिता नज़र न आती हो, वही दूसरेके लिए अत्यन्त उपयोगी हो?'

जाह्नवीकी बात सुनकर रोज़ प्रसन्नतासे मुस्करा दी, बोली: 'अणु जब टूटता है तो दुनिया भरमें खलबली मच जाती है। उसकी उपयोगिता पर सब बहस करते हैं। किन्तु टूटा अणु मिल भी तो सकता है। दो अणु जुट भी तो सकते हैं। इसमें तुम्हें कोई उपयोगिता ही नज़र नहीं आती?'

'तो ये प्रेमके अणु थे, यानी कीटाणु, जिनकी वजहसे दोनों एक दूसरेकी ओर ताकते रह गये!' माया ताली पीटकर हँस पड़ी, 'अच्छा दादी गो ऑन! वे एक दूसरेको देरतक देखते रहे, फिर क्या हुआ?'

बूढ़ी काकीने कहानी बढ़ायी, 'राजाने उस अप्सरासे विवाहका प्रस्ताव किया। वह भी राजाकी ओर आकृष्ट थी। तैयार हो गयी, पर दो शर्तों पर।'

'तो उसने शर्तें रखीं, बहुत खूब !' मायाने ठहाका लगाया, 'विवाह निश्चित ही कॉन्ट्रैक्ट है। सारी शर्तें सावधानीके साथ रखी जानी चाहिए, नहीं तो बादमें कॉमरेडशिप नहीं रह जाती।'

'घृणित', जन्हो बुदबुदायी : 'मैं तो विवाहमें शर्तकी बात सोच भी नहीं सकती। जिसे तन दिया जाय, उससे ही शर्त ! जाने लोग ऐसा कैसे कर लेते हैं। फिर क्या हुआ दादी ?'

काकी अपनी धोतीका पल्ला ठीक करती हुई बोलीं : 'हाँ तो उस अप्सराने दो शर्तें रखीं। पहली तो यह कि ये दोनों मेमने मुझे प्राणोंसे ज्यादा प्रिय हैं, जिस दिन ये मेरे पास न रहेंगे, मैं भी न रहूँगी। और दूसरी यह कि मैं तुम्हें कभी नंगा न देखूँ। जिस दिन नंगा देख लूँगी, उसी दिन चली जाऊँगी।'

'ऑल इम्प्रेक्टिकल, बिल्कुल अव्यावहारिक !' माया कह रही थी : 'पहली तो कोई शर्त ही नहीं। बुर्जुआ सोसाइटीकी नज़ाकत है बस। दूसरी शर्त है, पर एकदम अव्यावहारिक। पति-पत्नीके बीच क्या यह भी कोई शर्तकी बात है। केवल कल्पना, सत्यसे कोसों दूर।'

'सत्य कभी-कभी विरूप ज़रूर होता है दीदी' रोज़ कहने लगी : 'किन्तु विरूपको ही तो हम सत्य नहीं मान सकते। तुम्हें इसमें कल्पना नज़र आती है, मुझे तो एक अभिरुचि और मानसिक स्वास्थ्यकी झलक मिलती है। अभी तुमने विवाहको 'कॉन्ट्रैक्ट' कहा, जन्हो उसे 'समर्पण' मानती है, मैं मानती हूँ 'समझौता', एकदम 'पवित्र' समझौता। इसीलिए इसमें पूरी सजगता अपेक्षित है। चीज़ पहले मामूली लगती है, याकि हम मामूली कहकर टाल देते हैं, किन्तु अचानक वह भयंकर रूप ले लेती है। पैरमें एक काँटा चुभता है, मामूली-सा काँटा। किन्तु ज़रा सी असावधानी पर वह गैंग्रीनका रूप ले लेता है। तब उसका एक ही इलाज रहता है कि जिस अंगमें काँटा चुभा था, उसे काट दिया जाय। इससे तो अच्छा है कि हम पहलेसे ही एक दूसरेके रुचि-वैचित्र्यको अच्छी तरह जान लें।'

राज़ चुप हो गयी तो बूढ़ी काकीने कहानीके टूटे तारको फिर सँभाला। सचमें, उन्हें बड़ा बुरा लग रहा था, कि कहाँसे कहाँ फँसी। एक बात कहो तो सब आपसमें झगड़ने लगती हैं। बोलीं: 'शादी हुए कुछ ही दिन बीते थे कि गन्धर्वोंको अप्सराका अभाव खलने लगा। और उन्होंने एक रात, जब राजा अप्सराके साथ सोया हुआ था, मेमनोंको चुरा लिया। अप्सरा रोने लगी, और क्षोभसे बोली: 'हा निष्ठुर दैव, मैं कैसे कायरकी पत्नी हुई कि वह मेरे प्राणोंसे प्यारे मेमनोंकी रक्षा न कर सका।' राजा चोरोंको देख रहा था, उठकर उन्हें पकड़ना भी चाहता था; किन्तु दूसरी शर्तका खयाल करके उठ नहीं पाता था। किन्तु अप्सराकी धिक्कारको वह सह न सका और, अँधेरेमें कौन देखेगा, ऐसा सोचता चारपाईसे नीचे उतरा। त्योंही आकाशमें बिजली चमकी। अप्सराने उसे नंगा देख लिया और वह अन्तर्धान हो गयी।'

बूढ़ी काकीकी कहानीके इस हिस्सेको सुनते ही जाने क्यों वाचाल माया एकदम अवसन्न हो गयी। उसके चौड़े मुखपर गहरी उदासी छा गयी। आँखोंकी जोत जैसे भीतर ही किसी विस्तार, में या किसी गहराईमें खोयी रह गयी। बीते दिनोंकी कुछ बातें याद आ गयीं शायद उसे। तब वह केवल नौ सालकी थी। गँवई लड़की, अपढ़ गँवार। उसे क्या मालूम कि सगाई क्या होती है। दस वर्षा गौरी बालिका-दानके अभिलाषी पिता-महने शादी पक्की की! गलीके मोड़पर मायाको देखकर एक प्रौढ़ने मज़ाक किया, 'क्या गुड़िया, तेरी सगाई हो गयी?' मायाको बड़ी लाज आयी। और उसने अपना कुर्ता उठाकर मुँह ढँक लिया। बाकी सारी देह नंगी हो गयी। प्रौढ़ने उसके मुहसे कुर्ता खींचकर नीचे कर दिया और कहा: 'बावली, तेरी शादी हो रही है, अब तो कुछ ढंग-सलीकेसे रहना सीख।' और आज वह छब्बीस वर्षकी युवती है, सोलह वर्ष पहले अनजानेमें नंगी हो जानेकी बात पर वह शर्मसे गड़ जाती है।

किन्तु पिछले साल भी तो वह पच्चीसकी थी। पढ़ी-लिखी, बुद्धिमती।

पहाड़ गयी थी, बीमार बनकर। बीमारी क्या थी, सो तो वही जानती है। वहाँ बगलकी चारपाईपर एक पुरुष मरीज़ था जो मायाको देखकर कहता : 'आप बड़ी सुन्दर हैं।' जाने क्या हुआ मायाको कि एक दिन कमरेमें उस पुरुषके सामने एकदम नग्न होकर वह बोली : 'अब देखते क्या हो, तुम्हींने तो कहा था, मैं सुन्दर हूँ!' मुँहसे कुर्ता खींचकर जिस प्रौढ़ने मायाको ढंगसे रहनेकी सीख दी थी, पता नहीं उस समय वह होता तो क्या कहता! किन्तु आज तो बूढ़ी काकीकी कहानीकी अप्सराकी शर्त्तोंसे अपने जीवनके उन क्षणोंकी तुलना करके माया पानी पानी होती थी। बुर्जुआ प्रेम करनेवाली आदिम युगकी वह अप्सरा! कहाँ बीसवीं सदीकी बुद्धिमती माया सुन्दरी! माया फिर आँख उठाकर काकीसे कुछ पूछ न सकी।

'क्या सोच रही है री जन्हो?' वातावरणकी स्तब्धताको तोड़ते हुए काकी बोलीं।

'कुछ नहीं दादी,' जाह्नवी उदास भावसे बोली : 'यह स्वच्छन्द वातावरण भला कहाँसे पाऊँगी, यहाँ तो आत्मा घुटकर मर जाती है। बन्धन ऐसे हैं कि हम जिसे तन देती हैं उसे मन नहीं दे पातीं और जिसे मन दिया उसे समाज तन देनेकी इजाज़त नहीं देता!'

बूढ़ी काकी छोटी जाह्नवीकी बड़ी बात सुनकर भौंचक ताकने लगीं। सारी कहानी भूल गयीं। पोतीकी बातकी बारीकी उनकी समझमें भले न आयी, किन्तु जितना समझा वही उनके उठानेसे ज़्यादा था।

मायाने मुँह सहलाया। मुस्करानेकी कोशिश की। बोली : 'अच्छा भई अब चलो, काफी देर हो गयी। आगे हुआ भी क्या होगा! राजाने दूसरी शादी कर ली होगी। उसे औरतोंकी कमी ही क्या थी।'

'क्यों दादी ऐसा?' जन्होंको लगा कि कहानीका अन्त ही ग़लत हो जायगा तब तो।

'नहीं, रे नहीं,' काकी बोलीं 'वह क्या कोई आजकलका आदमी था, वह राजा पुरूरवा था जो उर्वशीके वियोगमें पागल होकर जंगल-जंगल रोता फिरा।'

'वही तो!' जाह्नवीको कुछ राहत हुई। काकी कुछ और कहने जा रही थीं कि एक बाधा खड़ी हो गयी। गन्दा सा घिनौना, बारह-तेरह सालका एक लड़का रोता हुआ उनके पास आया। उसे किसीने खेलमें पीट दिया था। और प्रतिकारमें असमर्थ ज़ार-ज़ार रोता हुआ वह काकीके पास आया।

'क्यों रे मधुवा,' बूढ़ी काकी पुचकारकर बोलीं, 'क्या हुआ? किसने मारा बेटा? मधुवा रोनेके अलावा शायद और कुछ नहीं जानता था। काकीकी पुचकारसे उसका रहा-सहा बन्धन भी ढीला हो गया और वह फुक्का फाड़कर रो उठा। आँसू, धूल और कालिखसे उसका सारा मुँह चुपड़ा हुआ था।

'यह कौन है दादी?' नाक सिकोड़कर माया बोली।

'मधुवा है बेटी', काकी बोलीं जैसे मधुवा कोई विश्व-विख्यात नेता हो। 'पिछले साल इसके चाचाकी भी मृत्यु हो गयी। माँ-बाप तो बेचारे के पहले ही मर चुके थे। एकदम अनाथ हो गया। मैंने रख लिया। सोचा कौन बड़ा पेट है, दो रोटी खायेगा, कहीं कोने-अँतरे पड़ा रहेगा! सीधा इतना है कि कोई कमज़ोर-से-कमज़ोर लड़का मार दे, कुछ कहेगा नहीं, बस रोयेगा।'

'कायर!' माया बिगड़ी, 'दादी ग़रीब होना और बात है, कायर होना और बात। भला बड़ा होकर यह अपने हक़के लिए कैसे लड़ सकेगा। ऐसे लोगोंके प्रति केवल 'इम्परफ़ेक्ट सिम्पैथी' हो सकती है, बस। गन्दा कितना है, राम-राम!'

माया सुन्दरीने बटुवेसे रूमाल निकालकर मुँह पर रख लिया।

'अरे चुप भी तो हो जा भाई!' रोज बिगड़ी और अपने कानोंमें

उँगली डालकर बोली : 'रोना, रोना, चारों तरफ़ तो रोना मचा है। कोई कहाँ-कहाँ सुनता फिरे !'

'रो तो लेने दे उसे दीदी,' जाह्नवी कह रही थी : 'रोनेसे मनको राहत मिलती है। आत्मा निष्कलुष होती है...'

'यह ऐसे चुप नहीं होगा' बूढ़ी काकी मुस्करायीं। तुम लोग एक रोते हुए लड़केको भी नहीं चुपवा सकतीं, बड़ी-बड़ी बातें तो बहुत करती हो ! और काकीने अपनी गोमुखीमें से एक लड्डू निकाला, जिसे अपने खानेके लिए छिपा रखा था, और उसे रोते हुए मधुवाके मुँहमें डालकर बोलीं : 'ले अब तो चुप हो जा !'

दादी मुस्करायीं, पोतियाँ खिलखिला उठीं। मधुवा रोते-रोते लड्डू खाने लगा था।

वशीकरण

कौन जानता था कि अपने ही हाथ बोये आमके बिरवेमें बबूलके काँटे लगेंगे। प्रकृतिके इस अघटित कर्मको संभाव्य मान लेनेसे मनके क्षोभमें कमी-बेशी होती है या नहीं; परन्तु माँको निश्चित विश्वास था कि भगवान्‌ने उनके किसी पूर्वजन्ममें किये पापका बदला लिया है जो उनके हीरे जैसे लड़केके गलेमें ऊँट बाँध दिया। वे भाभीको कँवरू-कमच्छाकी जादूगरनी कहतीं जिसने उनके सीधे-साधे लड़केको भेंड़ा बना लिया, बहिनका कहना था कि ऐसी बदसूरत औरत उसने इस गाँवमें कभी देखी ही नहीं और मेरे लिए सब कुछ सामान्य था, सहज था; पर मैं यही नहीं समझ पाता था कि शादीके दो हफ्ते बाद तक जो भाभी गठरीकी तरह गुड़ी-मुड़ी रहतीं, लजाधुर ऐसी कि कोई भी कनगुरियाँ न देख पाये, वे दो महीने बाद ही माँसे लड़-झगड़ कर मायके कैसे चली गईं। मुझे उनके चले जानेकी खबर न थी। शादीके दो ही चार दिनों बाद कालिज खुल गया, सो भर-मुँह बोलने-चालनेका मौका भी न मिला, दशहरेकी छुट्टीमें खुशी-खुशी कई सौगातें लेकर घर आया तो पता लगा भाभी मायके चलीं गईं। निराश हारे जुआरीकी तरह मैंने जब सामानोंका बण्डल खोला तो हाथसे वैसलीनकी एक डिब्बी उठाकर मिन्नी बोली: 'अरे वाह, भैंसके मुँहके लिए वैसलीन······' और न जाने क्या क्या बकती रही। कहती कम, हँसती थी ज्यादा।

मैंने गुस्सेको बहुतेरा दबाया पर कमबख्तकी खिलखिल घीकी तरह टपकती रही और तब लाचार उसकी चोटी पकड़कर खींचा, 'रख दे वैसलीन, बड़ी आई इन्द्रकी परी हुँ!' चिढ़ाने वाले इस वाक्यसे भी

भाभीके रूपके बारेमें बने अडिग विश्वासमें कमी न आई; किन्तु मेरा मुँह देख वह उठ कर भाग गई। माँ रसोईके दरवाजे पर खड़ी थीं, वह उनके पास सट कर संरक्षाकी आड़ लेकर ऊल-जलूल बकती रही। माँने डाँट दिया पर उनके चेहरे पर लड़कीके प्रति असहमति जैसा कोई भाव न था। लिखा था कि लड़की-लड़की है, मनके सही भावोंको छिपाना नहीं जानती तो नादानी कहलो; किन्तु असलियतसे मुँह भी कैसे फेरा जा सकता है।

पिछले महीने भाई भाभीको साथ रखनेके लिए लिवा लाये, माँने इसे जादूगरीका वशीकरण कहा, पास-पड़ोसने लड़केकी बेशर्मी। माँने व्रत ठान लिया कि वे भूल कर भी ऐसे लड़के-बहूको अपना न कहेंगी।

साल आयी गयी बीती; पर भाई-भाभीसे हम मिल न सके। आज परीक्षा खत्म होनेके बाद भाईका पत्र मिला तो माँकी मूर्ति मेरे सामने लक्ष्मण-रेखाकी तरह खिंच गई, पर एक बार मायारानीके वशीकरणकी शक्तिको देखनेकी उत्कट लालसा रोक न सका। मनमें उत्कंठा हुई, सिहरन भी।

दूसरे दिन शामको बंडल लादे-फादे जब मैं गाजीपुर पहुँचा तो मुझे भाईका घर ढूँढ़नेमें बहुत कठिनाई न हुई, वैसे मकान मेरा देखा न था परन्तु चिट्ठीके साथ भाईने रास्तोंका नक्शा भेज दिया था सो अटक न हुई; किन्तु मकानके सामने पहुँचते ही एक बार दिल काँप उठा। सकुशल दरवाजेके पास, या यों कहिए दरवाजेके बीचो-बीच पहुँच कर रुक गये और हिम्मत न हुई कि किसी को पुकारें। रिक्शेवालेने मदद की और सामान लेकर फाटकमें हेल गया। उसने ज़ोरकी हाँक लगायी, बग़लके कमरेसे झनककी आवाज सुनाई पड़ी, थाली गिरी शायद, भाईकी कड़कमें वह आवाज खोई भी न थी कि ऊँचा स्वर सुनाई पड़ा, 'तुम्हारी जैसी बेसहूर औरत तो सारी दुनियाँमें खोजे भी नहीं मिलेगी, जैसे किसी आदमीकी आवाज़ ही नहीं सुनी आज तक।'

हाथमें चाका प्याला लिए भाई बाहर आये; मुझे देखकर बोले: आ गये ? और उन्होंने रिक्शेवालेसे बरामदेके कमरेमें सामान रखनेको कहा। रिक्शावाला भाड़ा लेकर चला गया, रुकता भी कब तक। किन्तु मेरी मुसीबत तो बढ़ा ही दी। मेरे लिए अब भाई-भाभीकी ओर देखनेके अलावा कोई चारा न था, भाई अब भी गुस्सेमें थे और भाभीकी ओर कनखी देख लेते थे, जो नये आदमीके आ जानेसे कुछ सिकुड़ी हुई एक तरफ बैठी हुई थीं।

पहले दिनके इस दृश्यने मेरे मनसे सारी खुशी छीन ली। दो आदमियोंकी इस गृहस्थीमें, जिसमें मामूली बातों पर खासा झगड़ा खड़ा हो जाता मेरी स्थिति मँझधारके तिनके जैसी थी, जो बेसहारा बहता रहे तो भी गनीमत, यहाँ तो हर लहरसे डर लगता, पता नहीं किस थपेड़ेमें क्या रहस्य हो, खिंचे भी तो किस ओर, हटे भी तो कैसे। मकानके ऊपरी कमरेमें चुपचाप पड़ा रहता, खानेकी बुलाहट होती जाके खा लेता, नाश्ता कर आता, सुबह शाम इधर-उधर टहल भी आता, किन्तु-घूमघाम कर ज्योंही इस ड्योढ़ी पर पैर रखता, एक अज्ञात आशंका, दूसरोंके व्यर्थ कलहकी अस्वाभाविक लज्जासे माथा झुका रहता, बिस्तरे पर लेटा-लेटा छतकी शहतीरोंको टुकुर-टुकुर देखता और न जाने क्यों मुझे माँ पर बेहद गुस्सा आता कि उसने भाई-भाभीको गलत समझकर यों ही छोड़ दिया। भेड़ा बनना तो दूर भाभीने भाईको औरत बना लिया है एकदम औरत : और दोनों सपत्नियोंकी तरह आपसमें लड़ा करते हैं। झगड़ा करना ही इनका सबसे बड़ा वशीकरण है। बिना झगड़ेके इन दोनोंमेंसे किसीको चैन नहीं। भाई दस बजे आफिस जाते, चार बजे वापिस आते, आफिसके घंटोंके बाद जितनी देर वे घर पर रहते, तीन चार मौके तो ऐसे आ ही जाते कि वे भाभीको फूहड़, बेसहूर, वाहियात आदि आदि विशेषणोंसे अलंकृत करते और भाभी उनके मनके अभिमानको तनिक भी ठहरने न देतीं, जरा भी सह न पातीं, और बिना परवाह, दूनी

ताकतसे, एकका दो करके लौटा देतीं। भाई झल्लाते, भाभी फुफकारतीं, और मैं लज्जाकी आड़से कबूतरकी तरह दुबक कर उनकी ओर देखता। मुझे देखकर दोनों न जाने क्यों चुप हो जाते और फिर अविगलित क्रोधको घंटों खामोश रहकर धीरे-धीरे गलाया करते।

उस दिन शाम कुछ ठंडी थी और घरका वातावरण हल्का। आँगनमें चारपाई पर भाई बैठे थे, मैं भी था। दिनकी गर्मीसे तपी छत आँच उगल रही थी, किन्तु दोपहरी ऊमसके बाद हल्की गर्म हवा भी अच्छी लगती थी। भाभी नाश्ता देकर खाना बनाने चली गयीं, पानी देना भूल गयी थीं। मैं नाश्ता करके पानी चाहनेकी मुद्रामें बैठा था भाईने देखा तो आदतके मुताबिक उबल पड़े : 'पानी भी दोगी कि हमलोग नाश्ता करके जूठे हाथ बैठे रहेंगे।'

भाभीने भातकी बटुली उतारकर धम्मसे रखी और गुस्सेमें बोलीं : 'सौ हाथ तो नहीं हैं मेरे कि सारा काम एक साथ कर दूँ।'

मैंने देखा कि मामला बेढब हुआ जाता है और ऐसी शाम व्यर्थ ही खराब होनेवाली है तो बोल पड़ा : 'रहने दीजिए भाभी काममें फँसी हैं, मैं खुद पानी ले लेता हूँ।'

तब तक भाभी रसोई घरके चौकेसे बाहर आ चुकी थीं, मुझे उठते देख बोलीं, 'अपनेसे ही पानी लेकर पीना था, तो यहाँ आनेकी जरूरत क्या थी।'

भाईका तो जैसे पारा चढ़ गया, तमतमाये, क्रोधके मारे आवाज नहीं फूट रही थी। मैंने हँसते हुए कहा, 'लाइए न फिर आप ही, मैं तो आपके हाथसे पानी पीनेके लिए तरस रहा हूँ।'

भाभी एक क्षणके लिए ठिठकीं, उनकी गोल-गोल बादामी आँखें मेरे निर्भाव चेहरे पर टिकीं। पूरे कनवैसकी मामूली बारीकियोंको भी वे आँक लेना चाहती हैं; फिर सुराही उठाई, और पास आकर गिलासमें

पानी भरते हुए बोलीं : 'लीजिए'। मैं उनकी ओर कनखीसे देखता पानी पीता रहा। वे किंचित् मुस्कराती हुई बोलीं—'और !'

'नहीं,' मैंने कहा और पता नहीं क्यों वे सहज भावसे हँस पड़ीं, उनके श्वेत दाँतोंकी रेखा महुवेके फूलोंकी तरह रच उठी, और गर्मीका वह दहता-तपता आँगन एक हल्के झकोरेसे जाग उठा। भाई आश्चर्य-से इधर-उधर देख रहे थे। अभी-अभी अबाबिलकी तरह आँधीसे होड़ लेने के लिए वे डैनोंको फड़फड़ा रहे थे; किन्तु क्षितिजको भयंकर आघातसे कँपा देने वाली आँधी सुबहकी हवा जैसी लगी तो वे अकृतविद्यकी तरह अपने असफल क्रोधकी व्यर्थता पर न जाने क्यों हँसने लगे। घरका पूरा वातावरण जो कृत्रिम व्यवहारोंसे लदा था, इस स्वाभाविक घटनासे नई रंगतमें बदलने लगा। अब इस आँगनमें प्रातः कुछ भिन्न ढंगसे और शाम कुछ अलग तरहसे छाने लगी। छत पर गौरैयोंका शोर, बिल्लीकी बेमतलब म्याऊँ और दोपहरीका धूल-भरा अन्धड़ मनको राहत देने वाली वाद्य-ध्वनिकी तरह बजने लगे।

उस दिन सुबह नाश्ता कर चुका तो भाभी बोलीं : 'आज तुम भी जरा जल्दी 'उन्हीं'के साथ खाना खा लो मुझे कुछ कामसे पड़ोसमें जाना है।'

'पड़ोससे लौट तो आवोगी न' मैंने हँसते हुए कहा, 'खाना मैं बादमें ही खा लूँगा।'

'लौट न आऊँगी तो क्या वहाँ रहने पाऊँगी वे' मुस्कराकर बोलीं और भाईको खाना देने नीचे चलीं गयीं।

भाई खा-पीकर आफिस चले गये, भाभी पड़ोसमें और मैंने उस घरकी एकांतव्यापी नीरसतामें अपनी अवरुद्ध चंचलताको खुल-खेलनेका मौका दे दिया। मुद्दतके बाद जैसे घर परिचित लगा, तौलिया-साबुन लेकर बाथरूममें घुसा तो जीमें आया घंटों नलके नीचे बैठा रहूँ,

गाऊँ, हँसूँ, और अपने बेसुरे अलापोंसे इस घरकी मुर्दनीको तार-तार कर दूँ।

पता नहीं कब तक मैं नहाता रहा, कमरमें गमछा लपेटे और शरीर पर बिखरे पानीकी रेखाओंको बनाता-मिटाता मैं अगल वाले कमरेमें घुसा तो···'उई माँ' करके भाभी जोरसे चिल्ला पड़ीं और मैं धक्कसे पीछे हटा। बात यह थी कि वे दरवाजेके पास खड़ी होकर बड़े शीशेमें अपने बाल देख रही थीं, उसमें मेरी अर्धनग्न कायाको देखकर चौंक जाना स्वाभाविक था; किन्तु मैं तो इतना घबड़ा गया कि सीढ़ियोंसे खट् खट् करता छत पर दौड़ गया। साँस बुरी तरह फूल रही थी और बालोंसे टपके पानीमें पसीने की बूँदें घुल-मिल कर बहने लगी थीं।

खाना लेकर भाभी मेरे कमरेमें आईं। साँसोंकी रफ्तार साधारण हो गई थी किन्तु उनकी गर्मीका अनुभव अब भी था। मैंने खाते समय देखा, भाभीने कई दिनोंके बाद अपने बालोंको ठीक किया है, धोती भी पहलेसे ज्यादा ढंगकी और साफ़ है, उन्हें शायद एक अपरिचित व्यक्तिकी निकटताका आभास होने लगा था जिसके सामने नियमित श्लथ और नीरस घुटन को, अभ्यास होने पर भी सँभाल सकनेका साहस उनमें न था।

'भाभी, आज आप बहुत अच्छी लग रही हैं' मैंने कहा।'

'अच्छी' !

एक क्षणके लिए उनका गोल साँवरा चेहरा ओपहीन हो गया। उनकी अर्थहीन आँखें मेरे शब्दोंमें व्यंगकी तिक्तता को ढूँढ़नेका असफल प्रयत्न करती रहीं। मैं चुपचाप रोटीके टुकड़ेको मुँहमें डालता उनकी ओर देखता रहा। अश्रुतपूर्व शब्द की मोहकता उन्हें सहसा विमूढ़ न कर सकी क्योंकि उन्हें अपनी स्थितिका उचितसे कम ज्ञान था। सहसा ग्रीष्मके कुम्हलाये जंगली गुलाबकी तरह उनके चेहरे पर लाली दौड़ गई, निर्धनके अपार वैभवकी तरह उसे सँभालनेमें असमर्थ वे बोलीं, 'रोटी दूँ।'

'नहीं'

'लो न' उन्होंने जबर्दस्ती मेरी थालीमें रोटी डाल दी।

खाने-पीनेसे निपट कर भाभीको फिर आकर मेरे पास बैठनेमें कोई एक घंटे देर हुई। मुझे माँकी याद आई। भाभीकी तरह वे भी खाते समय थालीमें जबर्दस्ती रोटियाँ डाल देतीं। जरा भी नाहीं-नूँहीं करने पर वे समझतीं कि लड़का बीमार है और तुरन्त भूख लगने और हाजमा ठीक रखनेकी कई दवाइयाँ सुना जातीं, परेशान होकर हम बीच ही में झल्ला उठते तो वे नई रोशनीके बेवकूफ लड़कोंको कोसती-झींकती और हारकर अपने काममें लग जातीं। भाभी आकर मेरे पास बैठीं तो मैंने सोचा कि शायद वे माँ और बहिनके बारेमें कुछ पूछेंगी, किन्तु वे चाहकर भी जैसे कुछ पूछ नहीं पातीं। मैंने भी उस द्विविधाकी स्थितिको वैसे ही बने रहने देना उचित समझा।

'भाभी' मौन भंग करनेकी गरजसे मैं ही बोला : 'आप कहीं घूमती-फिरती नहीं, दिनभर घरमें बन्द। इस तरह कैसे चलेगा। शहरका हवा-पानी वैसे ही बहुत अच्छा नहीं होता, फिर एक जगह पड़े रहनेसे तो ठीक न होगा।'

'कहाँ घूमूँ' भाभीके स्वरोंकी इस असहायता और विवशताको एक क्षणके लिए भी झेलनेकी ताकत मुझमें न थी। कैसा प्रश्न है, इसी प्रश्नमें जैसे इनके जीवनकी सारी गतिहीनता मूर्तिमान हो गई है।

'भाभी, आपका मन क्या सिनेमा देखनेका नहीं होता?'

'सिनेमा, मैं भला अब क्या सिनेमा देखूँगी।'

मैं हँसी रोक न सका, 'ठीक ही तो कहा आपने, तुलसीकी एक कंठी डाल लीजिए और मचिये पर बैठकर राम-राम करिए।'

वे खुलकर हँस पड़ीं, बड़ी ही उन्मुक्त हँसी। इस घरकी दीवालोंने शायद ही अपनी स्वामिनीकी इस हँसीको कभी सुना होगा। उनकी हँसीके

हिलकोरोंसे मनके किनारे जमी घुटनकी पर्त-पर्त टूट रही थी और वे इन लहरोंकी शोखी और गरमाहटका अनुभव कर रही थीं जिनके स्पर्शसे उनके गालों पर एक नई चमक खेल रही थी जिसके झीने आवरणमें वे दुलहनकी तरह शरमा उठतीं थीं।

शामको चार बजे भाई वापिस आये और नाश्ता करके अपने एक मित्रसे मिलने चले गये। हमारे लिए कुछ और समय मिल गया और तय रहा कि अफीमको कोठी, सिविललाइन्सकी ओर घूमते-घामते हम पहले शोमें सिनेमा देखेंगे।

बन्द पानीकी सड़ाँध सही नहीं जाती। लोग कहते हैं कि बहते रहनेसे पानी निर्मल रहता है; किन्तु मुद्दतके बाद अवरुद्ध रहनेपर तालाब-का पानी कहीं बह चले, तो उसकी नवीन गति और काई-सेवारके साथ मछलियोंकी कुलबुलाट एक अजब समा बाँध देती है। रास्तेमें, सिनेमाके बीचमें, भाभी बिल्कुल चुप रहते-रहते खिलखिलाकर हँस पड़तीं, किसी खास दृश्यको देखनेके बाद, हमारे मनमें इस दृश्यके देखनेसे एक ही जैसी प्रतिक्रिया हुई कि नहीं यह जाननेके लिए हम सहसा एक दूसरेकी ओर देख लेते और तब भाभीकी पवित्र हँसीकी अर्चनासे वह क्षण एकदम गौरवशाली हो जाता।

शो खत्म होने पर मैंने पूछा: 'कहिए भाभी कैसा रहा?'

'रहा, कोई खास बात तो नहीं है' ऊपरसे ढकी किन्तु भीतरसे पुल-कित वे इस अन्दाजमें बोलीं जैसे उनके आनन्द भरे सम्मानपूर्ण जीवनके सामने इन क्षणोंका क्या मूल्य!

'अब बनिये तो मत' मैंने कहा और बगलवाली पानकी दूकानकी ओर बढ़ते हुए बोला: 'रुकिए जरा पान लेता आऊँ।'

दूकानसे लौटकर हम आगे बढ़े तो भाभीकी ओर पान बढ़ाते हुए मैंने कहा; 'यह लीजिए पान।'

वे न जाने क्यों बड़े आश्चर्यसे ठिठककर खड़ी हो गयीं। इतनी छोटी और अति साधारण बातके लिए उनके मनके द्वन्द्वको मैं समझ न सका। मुझे लगा कि यह सब उन्हें अप्रत्याशित मालूम हो रहा है। विपत्तियोंके अभ्यस्त मनमें आनन्दकी शंकाको जगाकर वे बोलीं: 'मुझे कहाँ ले जाओगे बाबू!'

'घर ले चल रहा हूँ भाभी' मैंने हँसकर कहा, 'आप घबड़ाइए मत। बिलकुल सकुशल पहुँचा दूँगा जैसी-की-तैसी।'

वे जोरसे हँस पड़ीं, 'इसमें घबड़ानेकी क्या बात है, मैं कहाँ घबड़ा रही हूँ।' भाभीने पान ले लिया और लैम्पपोस्टके प्रकाशमें खंभेकी झूलती नुकीली छायाकी आड़में उन्होंने पानको मुँहमें दबा लिया, शंकाओंका यह टुकड़ा उनके दाँतोंके नीचे पड़ा था, जिसे दबानेमें वे बार-बार सिहर उठती थीं।

भाईके लिए हम दूकानसे पूड़ियाँ लेते आये थे; किन्तु मनमें उनके क्रोधकी आशंका तो थी ही। हाँ भाभी पर कोई खास असर न था। घर पहुँचे तो जो सोचा था वही हुआ। पड़ोसके घरसे ताली लेकर भाईने दरवाजा खोल लिया था और आँगनमें चारपाई पर जले-भुने लेटे थे। उनके सोनेके ढंगसे ही मालूम हो गया कि मामला गड़बड़ है। भाईने हमें देखा; पर कुछ कहा नहीं। बिगड़ने-बननेके लिए कौन-सा समय ज्यादा मौजू होगा वे जानते थे।

'खाना नहीं बना है क्या' यह उनके लिए मूल विषय था। भाभीने जब थालीमें पूड़ियाँ लाकर सामने रख दीं तो वे अचकचाये, बना-बनाया खेल बिगड़ते देख बोले; 'बीस बार कहा कि पूड़ियोंसे मेरी तबियत खराब हो जाती है; पर इस घरमें मेरी सुननेवाला ही कौन है।'

उन्होंने क्रोधको क्लाइमेक्स पर पहुँचानेकी तैयारी की। आरम्भके लिए वे इतनी तल्खी काफी समझते थे; किन्तु ये तो जैसे चकराकर

आसमानसे गिरे, उनके कानोंको विश्वास न हुआ कि उनके आक्रोशका यह उत्तर मिल रहा है ।

'गलती हो गई' भाभीने कहा, 'पूड़ियाँ भी बाज़ारकी हैं, हम आज बिना पूछे सिनेमा चले गये थे ।'

भाईका सारा क्रोध हिचकी लेकर टूट पड़ा : 'नहीं-नहीं इसमें गलतीकी क्या बात । मुझे कब मालूम था कि तुम लोग सिनेमासे आ रहे हो, और दूसरा इन्तजाम भी क्या हो सकता था, ठीक है, ठीक है ।' वे बड़े चावसे तबीयत खराब करनेवाली उन पूड़ियोंको खाने लगे ।

मैंने शांतिकी शीतल साँस ली और देखा जेठी आकाशके आबदार तारे मोतीके टुकड़ेकी तरह चमक रहे हैं ।

कई दिन इसी तरह बीत गये । मैं घर जानेको तैयार हुआ । भाईके सामने बात उठी, मैं तो आश्चर्यसे भाभीकी ओर देखता रह गया । वे भाईसे पूछ रही थीं : 'मैं दो चार दिनके लिए गाँव चली जाऊँ तो···मैं माँको देखना चाहती हूँ···मिन्नी बबुईको भी···तकलीफ तो होगी आपको···'

'गाँव' भाईने हृत्कंप दबाकर उनकी ओर देखा, यह सब क्या हो रहा है ? उन्हें कुछ भी सूझ नहीं रहा था । वे इस अघटनीयको घटते देख उल्लाससे हँस पड़ना चाहते; किन्तु हँसते कैसे भला, बोले—'हाँ हाँ, जाओ हो आओ, मुझे क्या तकलीफ होगी, पहले तो अकेले रहता था न, दो चार दिनमें क्या हुआ जाता है ।'

माँके लिए काठकी चट्टी, सफेद धोती, रामायणका गुटका, ठाकुरजी का पट्ट, कुशकी चटाई और बहनके लिए चोटियाँ, साड़ी, आल्तेकी शीशी और न जाने कितनी जनाने पसन्दकी चीजें लेकर भाभी जब गाँव चलीं तो उनके चेहरे पर स्पष्ट अंकित था कि औरतको कुछ और भी चाहिए जो उसका पति नहीं दे सकता, जो यद्यपि पतिके प्यारके सामने थोड़ा खुरदरा

है, कम चिकना है किन्तु इन्हीं काँटेदार पत्तियोंके बीच स्नेह और प्यारका कोमल कमल सुरक्षित रहता है, उसका रस बचा रहता है, इसीसे उसमें सुगन्ध और परागका उदय होता है''' ।

दरवाजेमें भाभीको खड़ा करके मैंने जब माँसे कहा कि तेरे लिए दुलहन लाया हूँ तो पढ़े-लिखे लड़कोंकी शैतानीसे पूर्वाशंकित माँ एक बार भयसे काँप उठी ।

'राम रे, कैसी दुलहन ले आया है। तूने मुझसे पूछा तक नहीं।' वे अपना सिर पीटने लगीं।

'जल्दीमें पूछनेका मौका कहाँ था ?' मैं बोला : 'तुम यहाँ पर सर पीट रही हो वहाँ दालानमें खड़ी खड़ी दुलहनके पाँव पिरा रहे होंगे। हड़बड़ा कर माँ मेरे साथ चलीं, तो सामने घूँघटमें सिकुड़ी एक औरतको देख वे ठिठकीं, तब तक आँचलका खूँट हाथमें लिए भाभी उनके पैरोंमें गिर पड़ीं। माँने घूँघटके अन्दर भाभीको देखा। वृद्धाकी आँखोंको भाभीके चेहरेकी रेखाओंमें न जाने क्या दीख पड़ा कि वे एक बारगी लिपटकर रोने लगीं। वर्ष भरकी कलेजेपर जमी बर्फ एक दूसरेके स्पर्शसे पिघलकर आँसुओं में बहने लगी। माँने बहूको उठाया और दही-गुड़ खिलाकर दरीपर बिठला दिया। लगता था वे बहूको जैसे आँचलमें बाँध लेंगी, कहीं किसीकी नजर न लग जाये। दिन भर पड़ोसिनें आती रहीं और अपने आँसुओंसे इस घरकी जलती साँसको नये स्पन्दनसे भर जातीं।

शामको बहू की पहुनाईके लिए माँ बड़ियाँ बना रहीं थीं। सामनेकी दरी पर भाभी बैठी थीं।

बगलसे अपना छोटा-सा बक्स लेकर बहिन आई और भाभीके सामने चीजें निकाल-निकाल कर रखने लगीं। चोटियाँ, साबुन, नेलपालिशकी डिब्बी आदि।

'यह सब क्या है बबुई' भाभीने उत्सुकतासे पूछा।

'दशहरेकी छुट्टीमें छोटे भैया तुम्हारे लिए यह सब ले आये थे, तबसे मैंने इसे सहेज कर रखा अब तुम अपनी चीजें सँभालो।'

भाभीकी आँखोंमें न जाने क्यों पानी छलक आया, माँकी आँखोंमें उपलेका धुँवा लग गया था और झर-झर आँसू गिरने लगे।

'भैया तुमने भाभी पर क्या वशीकरण कर दिया' अन्तमें शरारतसे मिन्नी पूछ ही बैठी।

'वशीकरण तो भाभी जानती हैं न रे, इस बार भाईकी जगह उन्होंने मुझे भेंड़ा बनाया है।'

मिन्नी खिलखिलाकर हँस पड़ी। माँ की बड़ियाँ छिटककर बाहर गिर पड़ीं। भाभी मुस्कराईं। उनके आसुओंसे तर गालों पर साँझकी किरण चमक गई, मिन्नी आश्चर्यसे उनके सौन्दर्यकी इस नई आभाको देख रही थी।

उपहार

गुलाबीको गर्व है कि वह गाँवके छोटे-मोटे गृहस्थका काम नहीं करती। वह संग-साथकी लड़कियोंसे अपने ठाकुरकी बड़ाई करते नहीं थकती। ठाकुरकी उमर पचाससे क्या कम होगी। सुरती और पानसे सारे दाँत काले पड़ गये हैं। चेहरे पर जैसे रोब बरसता है। सारे इलाकेकी पंचायत वहीं बैठती है। अब तो ठाकुर सरपंच भी हैं। बड़े-बड़े हाकिम, दरोगा, डिप्टी तक हाथ मिलाते हैं। अभी उस दिनकी बात है कि गाँवकी एक लड़की पर अगेसर साहुके बड़े लड़केने आँख उठा दी। ठाकुरने बीच चौराहे बीस कोड़े लगवाये। गुलाबीका पूरा शरीर खिल उठता। उसके ठाकुरके जीते किसीकी मजाल क्या जो किसी पर आँख उठा सके।

अब ठाकुरका शरीर थोड़ा हिल रहा है। उनके आगसे दहकते शरीर पर साँवली राखी-सी झुर्रियाँ पड़ गई हैं। फिर भी साफा कितना चटक बाँधते हैं। पंचोंके बीच जब बोलने लगते हैं तब सबकी बोलती बन्द हो जाती है।

गुलाबी बड़े गर्वसे इधर-उधर घूमती। उसे विश्वास है कि ठाकुरकी छाया सदैव उसकी रक्षा करती है। रामनवमीका मेला, शिवजीका मन्दिर, बड़ा तालाब सब उनका जस बखानते हैं। यह उन्हींका प्रताप है कि गाँवमें सब खुशी-खुशी खा-पी रहे हैं।

'कल खिचड़ी है गुलाबी' हँसते हुए ठाकुरने कहा। उनकी सफेद मूँछोंके नीचे मासूम बच्चेकी-सी हँसी खेल उठी—'सुनो गुलाबी, भगवान् कसम मैं तुमको अपने-से भी अधिक चाहता हूँ।' गुलाबी सूपसे धान

हिलोर रही थी। उसके हाथ कुछ धीमे पड़े। ठाकुर चुपके-चुपके उसके पास आकर बैठ गये।

'कल खिचड़ी है गुलाबी !' ठाकुरने फिर कहा—'तुम्हें क्या चाहिए। कल मेला लगेगा।' गुलाबी चुप थी। उसने बड़े चुपकेसे सहमते हुए ठाकुरके चेहरेकी ओर देखा। अभी उसे कलकी सब बातें याद थीं। हरिनाचकके दीना मुसहरने ठाकुरके बगीचेसे कुछ सूखी लकड़ियाँ तोड़ लीं। चरवाहेने खबर की। मुसहर बुलाया गया। ठाकुरने बिना पूछे-ताछे दीनाके काले गालपर जो तड़ाकसे थप्पड़ मारा तो उसकी आँखोंसे चिन-गारी निकल गई।

गुलाबीने सहमकर देखा जाड़ेसे कुछ हल्के स्याह रंगके सूखे होंठ औसतसे ज्यादा खिच गये थे। छोटी-छोटी आँखोंमें बड़ी चिकनी चमक थी, उसने धीरेसे गर्दन झुका ली। धान हिलोरना शुरू कर दिया।

'रहने भी दो' ठाकुरने जल्दीसे गुलाबीकी ठंडसे सिकुड़ी अँगुलियाँ पकड़ लीं। सूप एक ओर गिर गया। ठाकुरकी साँसें तेज़ हो गई—'गुलाबी, तुमने कुछ कहा नहीं।' ठाकुरका पूरा शरीर मनकी मरोड़-सा गुरचने लगा। हाथ और भी कड़े हो गये। उन्होंने गुलाबीके हाथको खींचते हुए कहा—'गुलाबी'। साँसें टकराईं।

गुलाबी सहमी—'ठाकुर तुम्हें ज़रा भी शर्म नहीं, हाय भगवान्, दुनिया क्या कहेगी।' वह उठ खड़ी हुई।

'तुमने कुछ कहा नहीं गुलाबी' ठाकुरने अपनी असंतुलित अवस्था पर उपकार और कृपाकी झीनी चादर फैलाकर कहा—'कुछ भी तो कहो।'

'आप राजा दइव हैं मालिक ! मैं क्या कहूँ।'—ठाकुरने कुछ कहा नहीं। चुपकेसे उसकी ओर देखा और फिर उस बखारवाले घरसे बाहर हो गये। गुलाबी अपनी जगह बैठकर फिर धान हिलोरने लगी।

गुलाबी विधवा है। चमरौटीमें झोपड़ियोंसे घिरा एक आँगन है। बीचमें श्रीफलका एक पेड़।

गुलाबीकी माँ धनिया चमाइनको कोई न था, एक ही लड़की थी। बूढ़ीने ज़िन्दगीभर कटिया-पिसिया कर कुछ पैसे जोड़े और फिर उनसे दाल चावलका जुगाड़ किया। एक दिन बाजे-गाजेके बीच बूढ़ीने बच्चीके नन्हें हाथको उससे भी अधिक मासूम हाथमें सौंपकर सन्तोषकी साँस ली। दिन बीते जर्जर कन्धेसे जवान लड़कीका भार उतार बूढ़ीने आखिरी साँस ली और उधर हल्दीके रंगके छूटनेके पहले बरसाती नदीमें अनजाने मिले तिनकेका सहारा छूट गया। गुलाबी रो-धोकर विधवा बनी।

ठाकुरका चरवाहा बचन बड़ा हँसोड़ है। हाँ, तो झोपड़ियोंसे घिरा आँगन है और ठीक बीचमें श्रीफलका पेड़। उस दिन प्रदोष था। ठकुरानी व्रत थीं। चरवाहेने श्रीफलकी डाल झुकाकर पत्ते तोड़ते हुए कहा 'कहो गुलाबी अच्छी तो हो?'

गुलाबी चुप थी।

बचन बोला 'कहो गुलाबी, इस श्रीफलमें पत्ते ही लगते हैं या फल भी?'

गुलाबी फिर चुप थी।

बचन बोला 'आजकल बड़ी उल्टी हवा चल रही है गुलाबी।'

गुलाबी चौंकी 'कैसी हवा।'

'अब क्या बताऊँ। न बताना ही ठीक है।'

'कुछ कहो भी तो' गुलाबी उत्सुकतासे उठ खड़ी हुई 'कैसी हवा चली है। मटरपर पाले तो नहीं पड़े। कैसी हवा चली है।'

'बड़ी खराब, कुछ न पूछो। सभी लड़कियाँ गूँगी-सी हो रही हैं।'

गुलाबी मुस्कराई 'और मर्द'

'वे सब बकवासी, हाँ गुलाबी, तुमने बताया नहीं।'

'क्या?'

'यही कि इस श्रीफलमें पत्ते ही लगते हैं या फल भी।'

'फल भी लगते हैं जी, पर तुमसे मतलब ।'

'मतलब कुछ नहीं, पूछना चाहता था पत्ते ही तोड़नेका हुकुम है या फल भी ।'

गुलाबी हँसी। उसकी आँखके सामने सफेद सलाइयों वाला चिकना सूप था और उसमें हलरता हुआ धान जिसका सुर धीरे-धीरे गर्मी देने लगा था। जाड़ेसे टंडी फुर्तीली पलकें धीरे-धीरे झुकने लगीं।

तभी आँगनमें शोर हुआ। गुलाबी धान हिलोरना छोड़कर बाहर आई। आज ठाकुरने फिर अपनी पत्नीको मारा। गुलाबीको बड़ा बुरा लगा। यह सच है कि ऊँची दीवालोंको पारकर ठकुरानीके रोनेका स्वर गलियों तक नहीं जा पाता; क्योंकि वे रोती नहीं सिसकती हैं।

'ठाकुर है बड़ा कसाई' गुलाबीने मन ही मन कहा 'रंगा स्यार है। दुनिया भरका फैसला करता है और खुद पापमें हाथ डालता है। राम-राम ऐसी सीता-सी औरतपर कैसे हाथ उठाता है।'

उसी समय दालानसे ठाकुर निकले। पूरा चेहरा शराबीके मुँह-सा विकृत हो गया था। गुलाबीने देखा और डरकर बखारवाले घरमें जाकर धान हिलोरने लगी।

आज खिचड़ी है। रात बड़ा जोरका पानी बरसा। आधी रातके बाद से कुहरा पड़ रहा है। घना कुहरा है, हाथ नहीं दिखायी पड़ता। गाँवके उत्तरी छोर पर रेलवे लाइन है। गाड़ियाँ धीरे चलती हैं। स्टेशनके पास पटाखे लगे हैं। छूटते ही गाड़ी रुकने लगती है। सिगनल तो दिखायी पड़ते नहीं। पुलके पास बरगदका पेड़ है। पूरा सिवान गुमसुम खामोश है, जैसे किसीने बड़ेसे कूँचेसे सब पर चूना फेर दिया हो।

'बड़ा ठर्रा है गुलाबी। न हो तुम लौट जाओ।' बरगदके पेड़से टप-टप बूँदें चूती हैं। ऊपर जैसे घना धुँवा फैल रहा हो। खिचड़ीके दिन, पहले पहले कच्ची मटर कटती है।

बच्चन बोला—'मैं ही दो बोझ बाँधकर रख आऊँगा तुम लौट जाओ।'

'जाड़ा कहाँ है, कुहरा तो फैला है।' गुलाबी बोली—'न हो थोड़ा पुआल बाँध लो। वहीं ताप लेंगे।'

बच्चनने पुआल बाँधे दोनों चल पड़े।

'आज खिचड़ी है गुलाबी' बच्चन बोला—'जल्दीसे मटर रख कर हम भी मेला चलेंगे। आज ठाकुर पैसे देंगे। बोलो तुम्हें क्या चाहिए?'

गुलाबी मुस्कराई—'ठाकुरके पैसे पर क्या बोलना'।

बच्चनका चेहरा उतर गया।

'ठीक कहती हो गुलाबी' बच्चन गुम-सुम कुछ सोचने लगा। गुलाबीको उसकी चुप्पी बड़ी बुरी लगी। बोली—'चुप क्यों हो गये। क्या सोच रहे हो।'

'मेरा मन कहता है गुलाबीकी ठाकुरकी नौकरी छोड़ दूँ। पहाड़-सा काम, धौंस ऊपरसे। और फिर पैसे भी तो नहीं मिलते। बिना पैसे वालोंको कोई पूछता नहीं। मन कहता है कलकत्ता भाग जाऊँ भैयाके पास।' बच्चनने बड़ी कातर दृष्टिसे देखा। गुलाबीने आँखें नीचे करलीं।

'नहीं नहीं ऐसा मत करना।' गुलाबी चंचल हो उठी 'पैसेकी जरूरत ही क्या है। सुना वहाँ तो लोग भूखों मरते हैं। यहाँ खानेको तो मिल ही जाता है। मैंने तो यों ही कह दिया। मुझे कुछ भी नहीं चाहिए।' वह अपराधी-सी बच्चनकी ओर देखकर बोली—'नहीं जाओगे न?'

बच्चन उसके पास आ गया। गुलाबीने ज़ोरसे उसका हाथ पकड़ लिया। 'नहीं जाऊँगा गुलाबी।'

'नहीं मुझे छू कर कसम खाओ। नहीं जाओगे न।'

बच्चनने उसका ठिठुरता हाथ पकड़ लिया। टप टप दो बूँदें चू पड़ीं दोनों हाथों पर।

'तुम रोती हो गुलाबो मैं तुम्हें छोड़ कर कहीं नहीं जा सकता।'

खिचड़ी बीते आज चार रोज हो गये। सुबह है। ठाकुरको न जाने क्यों चीजें बदली नज़र आती हैं। उनका मोटा तगड़ा घोड़ा कुछ पतला लगा। बच्चन सामने हाथ जोड़कर खड़ा है।

'सुनो बच्चन !' ठाकुरने गर्दन हिलाकर होंठ चबाते हुए कहा 'भई रियायत इतनी ही है। रुपये सब आज चुका दो। और जल्दी गाँव छोड़ दो। तुम्हारी यहाँ कोई जरूरत नहीं।'

'मालिक' बच्चन गिड़गिड़ाया। 'आज रुपये कौन देगा सरकार।'

'कुछ नहीं।' ठाकुर चुप हो गये।

खूँटीसे अपना कोड़ा उतारा। बिना पूछे-ताछे सड़-सड़। बच्चन चिल्लाया 'सरकार आप माई बाप हैं।'

'तुम अपनेको क्या समझ रखे हो। और आँखें लड़ाओ।' सट् सट् कोड़े तड़के। गलीसे दौड़ कर कुछ लोग पास आए। पर सब ठिठक कर खड़े हो गये।

'जाने दो दादा। हो गया। रग्घू चौधरी बोले 'जारे बचन, काम कर।'

'देखो चौधरी, तुमही।' ठाकुरके होठ हिले—'अपना हजार रुपये को घोड़ा मैंने इस पर छोड़ा। दाना गायब। भूसा गायब। आखिर जानवर हमसे कहेगा तो नहीं कि वह भूखा है। मेरा सारा रुपया इसने पानीमें डुबा दिया।

'गलती है इसकी' चौधरी बोले 'अबे नमक खाता है मालिकका। ईमानदार बन।'

बच्चन सिर झुकाये सभी अपराध सुनता रहा। 'चला जा सामनेसे' ठाकुर बिगड़े। नीचे मुह किये अपने घावोंको हाथसे छिपानेका असफल प्रयत्न करता बच्चन चला गया।

शाम हो गई थी। कुहरे और बादलोंसे ढँके आसमानकी कालिमा गहरी हो कर गाँवकी मुडेरों, छतों और झोपड़ियों पर फैलने लगी थी। बड़ी सर्द हवा चल रही थी। बचन अपने बदनके घावोंके दर्दसे व्याकुल था पर उसने मुँहसे उफ् तक नहीं की। चुप-चाप फटे हुए कुर्तेसे उन्हें छिपाये हुए गाँवकी गलियोंसे चला जा रहा था। उसके मनमें बार बार एक हूक सी उठती। चौधरीने कहा था कि मालिकका नमक खाता है तो ईमानदार बन। उसने अपनी ज़िन्दगीके अट्ठारह साल ठाकुरकी नौकरीमें बिता दिये, कभी उसकी ईमानदारी पर सन्देह नहीं किया गया। उसकी माँ भी ठाकुरका काम करती थी और जब वह महज चार सालका लड़का था, उसे ठाकुरकी भैंसोंकी देख-रेखका काम सौंपा गया। वह दिन भर भैंसोंके साथ, सिवान, खेतों, झाड़ियों, पोखरियोंका चक्कर लगाता दो बजेके करीब उन्हें नहला-धोकर जब वह अपनी माँके पास पहुँचता तो बाजरेके भात, पानीदार दाल, कभी बेझरेकी मोटी जली रोटियाँ, कभी दो मुट्ठी मकईके दानोंके अलावा कुछ दूसरा न मिलता। ठाकुरके घरमें घुसनेमें उसे डर लगती। एक साल ही हुए थे इस तरह कि उसकी माँ मरी। और तब वह बालिग मान लिया गया। चौबीसों घंटेका नौकर। ठाकुरकी गोशालामें चरनी पर अक्सर नंगे, कभी तेज सर्दीके दिनोंमें प्याल पर सो जाना पड़ता। इस तरह करके उसने जिन्दगीके बारह साल बिता दिये। दो सालसे वह घोड़ेका साईस है। इन तमाम वर्षोंमें उसे जो भी कहा गया हो, काहिल, कामचोर, कुम्भकर्ण, पेटू, आदि आदि पर उसे आजतक किसीने चोर और बेईमान नहीं कहा—क्यों आज ही वह ऐसा हो गया। यदि बिना चोरी किये चोर कहा जाता है, तो वह पहले ही क्यों नहीं कहा गया। तभी उसे याद पड़ी गुलाबी। तो यह बात है। ठाकुरने कहा था, और आँखें लड़ाओ। बच्चन यह सोचकर एक क्षणके लिए चुप-चाप खड़ा हो गया। उसका सारा शरीर माघकी सर्द रातमें पसीनेसे नहा गया। रोयें भरभरा गये थे। पता नहीं गुलाबी क्या चाहती है। ठाकुरसे झगड़ा मोल लेकर वह गुलाबी

की ज़िन्दगी भी बरबाद करेगा। नहीं, नहीं इससे तो अच्छा है वह कहीं कुएँ-तालाबमें डूब मरे।

वह चुपचाप दबे पाँव चमरौटीकी गलीसे चला जा रहा था कि अँधेरेमें कोई छाया हिली।

'कौन है ?'

'मैं हूँ ?'

'बच्चन !'

'हाँ, तुम यहाँ कैसे, अँधेरेमें क्यों खड़ी हो।'

'तुम्हारी राह देख रही थी' गुलाबीका गला भरा हुआ था 'जग्गू कह रहा था कि ठाकुरने तुम्हें बहुत मारा है···सच मारा है, क्यों मारा है उसने'

'कहते थे मैं चोर हूँ, बेईमान हूँ, घोड़ेकी रातिब चुराकर बेच देता हूँ।'

'झूठा, और कुछ नहीं कहा उसने ?'

'नहीं तो···' बच्चन भय और पीड़ासे उसकी ओर देख रहा था।

'चौधरीके लड़के जग्गूने मुझसे सब बता दिया है, असलमें इस सारे झगड़ेके बीचमें मैं हूँ। मेरी वजहसे उसने तुम्हें मारा' वह कह एक क्षण मौन रही फिर धीरेसे बोली : 'लेकिन अब क्या होगा ?'

'होगा क्या, चुपचाप पड़े रहेंगे, दो चार रोजमें उनका गुस्सा ठंढा हो जायेगा, फिर काम शुरू करेंगे।'

गुलाबी कुछ न बोली। वह एक लहमेके लिए चुपचाप अंधेरेमें देखती रह गई। 'नहीं, यह न होगा, छोड़ दो काम उसका। आज ही, इसी रात हम गाँव छोड़कर कहीं और चले जायेंगे'।

'पागल हो गई हो, कहाँ जायेंगे हम।'

'कहीं भी, बेजुबान बैलकी तरह चोट सहकर चुप रहना तो नहीं पड़ेगा। बैल भी मार पड़ती है तो बाँय-बाँय करते हैं। तुम तो बैलसे भी गये-बीते हो।'

बचन और गुलाबी श्रीफलके पेड़के नीचे चुपचाप खड़े थे। इतने ही में दरवाजेके पाससे एक छाया हिली, और ठाकुर जोरसे बोले: 'क्यों गुलाबी, कुछ काम-धामकी भी सुध है या मोहब्बतका नाटक ही होता रहेगा।'

'तुमसे मतलब, चले जाओ यहाँसे, हम तुम्हारे नौकर नहीं हैं।'

'जबान संभालकर बोल कुतिया कहीं की, मारे हंटर खाल खींच लूँगा, अपने चहेतेसे पूछ कैसे लगता है हंटरका घाव?'

'जाके अपनी घर वालीकी खाल खींचो ठाकुर, वही दरबेमें बंद मुर्गीकी तरह ओठ सिये तुम्हारा जुलुम सहेगी, काहेसे कि तुम उसे चारा देते हो। अपना क्या, हाथ-पाँव चलाके दो रोटी कहींसे भी कमा लेंगे। तुम्हारी धौंस सहने वाले कोई और होंगे, हाँ।' गुलाबी झटकेके साथ मुड़ी और अपनी झोंपड़ीसे कागजमें लिपटा एक बंडल उठा लाई 'यह है तुम्हारी साड़ी, यह उपहार अपनी घरवालीको दे देना' उसने गुस्सेसे बंडल ठाकुरके मुँह पर फेंक दिया: 'कसाई कहींका।' ठाकुर आश्चर्यसे उसे देखते रह गये। उन्हें इत्मीनान ही नहीं हुआ कि यह सब कुछ गुलाबी कह रही है। डरी-दबी, सिमटी रहने वाली गरीब गुलाबी। उन्होंने बंडल उठाया और चुपचाप झोपड़ेसे बाहर चले गये।

श्रीफलकी छायाके नीचे रह गये गुलाबी और बच्चन। बच्चन बेवकूफ़की तरह उसकी ओर ताके जा रहा था।

'क्या देखते हो पागलकी तरह?'

'देख रहा हूँ कि इस सिरफलमें फल ही नहीं लगते, बल्कि ये अन-चक्के टपक भी पड़ते हैं और आदमी खियालसे न रहा तो खोपड़ी भी फोड़ देते हैं, बाप रे।'

गुलाबी जोरसे हँसी और उसने बचनको अपनी बाहोंमें भर लिया। हृदयके घावों पर ममतासे भरा यह स्पर्श मरहमकी तरह शीतल लग रहा था। कुहरेसे लिपटी हुई अँधेरी अपने मैले आँचलमें उन्हें मासूम बच्चोंकी तरह छिपाकर थपकियाँ दे रही थी……

सँपेरा

खलिहान वाले पीपलके नीचे नटोंका डेरा पड़ा था। सिरकीकी आड़में धरतीपर धरी ईंटोंके चूल्हे धुकधुका रहे थे, लकड़ियाँ नम थीं, धुआँ चारों ओर फैल रहा था। चूल्होंके पास बैठी दो नट्टिनें नाकोंकी कटावदार टीके वाली नथें हिलाती हुई शोर कर रही थीं। धुएँके शामियानेके नीचे गूदड़का बिस्तर लगाये नटोंका खलीफा बक्कस रोबसे बैठा था।

बक्कसके सामने बेतकी तीलियोंके पींजरेमें एक गाउदी तीतरका बच्चा बन्द था जिसे वह आँटेकी गोलियाँ खिला रहा था और तीखी आवाजसे कुरेद-कुरेदकर बोलना सिखा रहा था, तीतरका बच्चा अपनी शंखनुमा नरम चोंचको कँपाकर कुछ कहना चाहता, फिर लपककर आँटेकी गोली उठा लेता और आँखें मुलमुलाकर उसे निगलने लग जाता।

डेरेसे थोड़ा हटकर एक युवक नट लेटा था जिसकी स्याह आँखें आसमानकी सियाहीमें टिकी थीं···उसे पता भी न था कि सिरहाने रखी डोलचीमें एक मुर्गी घुसनेका प्रयत्न कर रही है जिसमें छोटी-बड़ी कई हाँडियोंमें बन्द तरह-तरहके साँप कुलबुला रहे थे, दूसरी डोलचीपर उसकी तूँबी लटक रही थी जिसके छेदोंसे टकराकर सरसराती हवा साँय-साँय कर रही थी।

सामनेसे परसोतम पाँडेके साथ गाँवके ज़मीदार आ रहे थे, नटोंका आना सुन कर एक बार उनका मुआयना कर जाना वे ज़रूरी काम समझते थे।

'इस बार तुम अकेले दिखाई पड़ रहे हो बक्कस?' ठाकुरको देख कर बक्कस उठा और अदायगीके साथ सलाम बजाया, 'क्या करें ग़रीब-

परवर, लड़के किसीकी सुनते नहीं और अब बुड्ढेको कौन पूछता है माई-बाप ! अकेले किसी तरह गुज़र करते हैं' बक्कसने ठाकुरके चेहरेकी ओर देखा, उसकी आँखोंमें बड़ी नम्रता थी, किन्तु उनका अन्तराल कितना दाहक और घृणा-भरा था, इसे ऊपरसे देख कर कौन जान सकता था।

'यह कौन है ?' ठाकुरने उधर लेटे उस युवक नटकी ओर इशारा करते पूछा, वह अभी भी वैसे ही लेटा था, जैसे इन आने-जाने वालोंसे उसका कोई मतलब नहीं।

'नर्बीका लड़का है हुजूर', बक्कस बोला, 'बड़े ग़ममें रहता है ग़रीब-परवर, पिछले साल आपके ही गाँवमें तो इसकी घरवालीकी मौत हुई थी सरकार, शामको पानी लाने नदीकी तरफ़ गयी सो बेचारी लौटी नहीं, सुबहको उसकी लाश मिली थी, पता नहीं क्या हो गया था उसको ?' बक्कस नटके नथुने ख़ूनकी गर्मीसे जलने लगे थे, उसकी आँखोंमें आगकी लपट उठने लगी थी; किन्तु सबको पीता हुआ वह बोला, 'उसी सदमेमें सरकार यह होश खो बैठा, बिलकुल पागल हो गया है, साल भर तक मुलुक-मुलुककी खाक छानता फिरा, कसरत-कुश्ती तो अब इसको भाती नहीं, साँप नचाता है, कई दफ़े कहा कि यह खतरनाक काम है, छोड़दो, पर सुनता ही नहीं, पता नहीं उस कम्बख्त लोंडियाकी रूह कब तक इसका पीछा करती रहेगी।'

पता नहीं बक्कस इस कहानीको कितनी तूल देना चाहता था कि ठाकुर क्रोधसे चिल्ला उठे, 'बन्द करो यह सब, इसे कहदो यहाँसे चला जाय, गाँव-गिराँवका मामला है, पचासों साँप हाँड़ियोंमें बन्द किये हैं, कहीं कुछ हो गया तो ज़िम्मेदारी किसके ऊपर होगी !'

बक्कस मुस्कराया, व्यंगसे भरी तीखी मुस्कराहट, 'आप भी क्या कहते हैं राजा ! अरे ये सब साँप सताये हैं सरकार ! ज़हरका दाँत ही कहाँ रह गया इनका, बिना खाये ज़हर भी तो नहीं बनता—क्या खाकर काटेंगे भला ये !' और वह न जाने क्यों खिलखिला कर हँस पड़ा।

'चुप करो' ठाकुर तड़पे, 'हमें बकवास सुननेकी आदत नहीं, एक बार कह दिया चले जाओ अभी, हम पापसे रोज़ी कमाने वालोंको गाँवमें जगह नहीं दे सकते, चोर-डकैतीकी रोज़ वारदातें हो रही हैं।'

'शास्तरमें भी कहा है बाबू साहब' परसोतम पाँड़ेने खैनी ठोंकते हुए कहा, 'कसाई, पापजीवी और आततायीको नगरमें सरन नहीं देनी चाहिए, बापरे बाप, एक तो नट दूसरे सँपेरा, एक भी कालका बच्चा छूटे तो सारे गाँवको छूकर सुलादे !'

'चोर-लुटेरे कोई और होंगे बाबू' बक्कस बोला ; किन्तु क्रोधके मारे आगे कुछ न कह सका।

'हाँ हाँ तुम बड़े साह हो' ठाकुर खिसियाये, 'एक बार कह दिया कि चले जाओ, मगर लगता है सीधे नहीं जाओगे कुछ और करना होगा' और उन्होंने ज़ोरसे आवाज़ देकर चरना नाईको पुकारा।

बक्कसने धीरे-धीरे अपना सामान बटोरना शुरू किया, लड़का भी उठ बैठा, उसने अपनी डोलचियोंको बहँगीमें फँसाया और मचसे कन्धे पर रख लिया, देखते ही देखते गुदड़े, बोरे, पिंजड़े, पास खड़ी भैंस पर लाद दिये गये, अधपके खानेकी हाँड़ियाँ हाथमें लिये नट्टिनें पीछे-पीछे चल पड़ीं और पाँच मिनट भी नहीं लगे कि बक्कसका चलता-फिरता घर अँधेरेमें आँखोंसे ओझल हो गया।

बक्कस नटका कुनबा अक्सर गर्मीके दिनोंमें इधर आया करता था, नदी पास थी, आसपास बड़-पीपलके पेड़ोंकी बहुतायत थी, इसलिए नटोंका कुनबा महीनों इस गाँवमें डेरा डाले पड़ा रहता।

बक्कस नटोंका खलीफ़ा था, दुनियाका कोई भी ऐब उससे छूटा न था, चोरी-डकैती उसका पुश्तैनी कारबार था; अफ़ीम-गाँजेका छिपा-चोरी लेन-देन उसका प्यारा रोज़गार था; गाँव-गाँव कुश्ती लड़ाना या आल्हा गाना तो ऊपरका दिखौवा काम था, शराबकी उसे लत थी, रोज़

रातको पीता, दिनभर देहमें दर्द होता, नसें चटकने लगतीं, एक न एक लड़का हमेशा उसकी देह पर चढ़ा रहता।

अपनी उगती जवानीमें बक्कस एक विधवा वैश्य लड़कीको उड़ा लाया था, जिससे तीन सन्तानें हुईं : दो लड़के और एक लड़की। माँके असरसे यह लड़की, कम्मो, नटोंकी तरह काली न थी, गेहुआँ रंग धूपमें तप तप कर साँवला हो गया था, धूल-बवण्डरमें उसके बिखरे हुए हल्के बादामी रंगके बाल चमकते रहते, गोल चेहरे पर ठुड्डीके पास एक हल्का-सा गुदना था, वह गाँवमें घूम-घूम कर गुदना गोदनेका काम करती, उसकी नज़ाकत भरी बातें सुनकर बहुएँ उसके आगे गोदनेके लिए हाथ कर देतीं।

वह शरारतसे मुस्कराकर कहती : 'दाँत पर दाँत लगालो बहूरानी, पहले थोड़ा-सा दर्द होता है, बादमें अच्छा लगता है' बहू लजा कर सिकुड़ जाती और वह आँखें नचा नचा कर सी-सी करती बहूके हाथों पर पान-फूल, तितली और शंखकी तस्वीरें उतारने लगती, स्त्रियाँ इससे बहुत खुश रहतीं, और नवजवान तो उसकी चाल ढाल पर कुर्बान जाते।

बक्कसने कम्मोकी शादी नबीके लड़के बशीरसे करदी थी। जैसी कम्मो वैसी ही बशीर, दोनोंका जोड़ा नटोंके कुनबेमें देवी-देवताकी तरह पूजा जाता। बशीरकी चिकनी काली देहमें अपार ताक़त लोटती रहती। खलीफ़ा बक्कसके कुनबेमें एक से एक पट्ठे थे, जिनके बलका कम्मोको अहसास था और वह स्वच्छन्द नील गायकी तरह निधड़क गाँवोंमें घूमा करती, किन्तु यह सारा बल और विश्वास कम्मोकी कुछ रक्षा न कर सका और एक दिन वह ज़मींदारके पंजेमें फँस ही गयी।

शामके समय नदीसे पानी लाते समय कम्मोको ज़मींदारके आदमियोंने पकड़ लिया, चिड़ियोंको जालमें फँसाने वाले बहेलिये भी इतनी फ़ुरतीसे अपना काम न कर पाते होंगे जैसी फ़ुरती ज़मींदारके ये चुने हुए गुण्डे मासूम औरतोंको पकड़नेमें दिखाते। रातका मायूसी भरा आँचल गाँवके

ऊपर फैल गया, किसीको कानों-कान खबर तक न लगी और पाशविक बलके क्रूर पंजों तले बेबसी और मासूमियत सदाके लिए कुचल दी गयी।

ज़मींदारको यह स्वप्नमें भी खयाल न आया होगा कि पापजीवी नटोंकी लड़की, अवैध हमल गिरानेके लिए छिपे-लुके अफ़ीमका रोज़गार करने वाली युवती, तथा औरतोंके सामने दिल खोलकर भद्दे मजाक करने वाली स्त्रीको भी अपनी अस्मतकी परवाह होगी, किन्तु कम्मोने जब आँचल की खूँटमें बँधी अफ़ीम खाकर अपनी मौतको हँसते-हँसते भेंट लिया, तो ज़मींदारकी बुद्धि भ्रष्ट तारेकी तरह डगमगाने लगी और उसने किसी तरह साहस करके उस लाशको नदीमें फिकवानेका इन्तज़ाम किया।

ज़मींदारके इस पापकी कहानी किसीसे छिपी न रह सकी, बक्कस अपनी लड़कीकी लाशके पास बैठकर घण्टों रोता रहा, बशीरको तो जैसे विश्वास ही न होता कि कम्मो मर गयी है, किसी तरह लाशको दफ़नाया गया, बक्कस घायल साँपकी तरह फुफकारता डेरे पर लौट आया और उसी दिन डेरा लाद-फाद कर कहीं चला गया।

कई महीने बीते, अँधेरी उजाली रातें आयीं, गईं। दिन बढ़े, घटे। किन्तु बक्कस और बशीरके हृदयका घाव बना रहा, उसमें किसी तरहकी कमी-बेशी न हुई, इसी बीच कम्मोकी मृत्युका बदला लेनेके लिए बशीरने सँपेरेका पेशा अख्त्यार किया, फ़रीदपुरके शेखसे उसने बड़ी आरज़ू-मिन्नतके बाद साँप चलानेका मन्त्र भी हासिल किया, ठाकुरके परिवारका नाश करनेकी पूरी उम्मीदके साथ वे एक साल बाद फिर इसी गाँवको वापिस लौटे।

खलिहान वाले पेड़के नीचेसे अपना डेरा लेकर जब बक्कस चला तो उसके मनमें तरह-तरहके विचारोंकी आँधी उठ रही थी, उसके जीवनका बस एक ही उद्देश्य था : ठाकुरसे कम्मोकी मृत्युका बदला।

अपने कुनबेके साथ बक्कस नदीके किनारे आकर खड़ा हो गया, 'बस आज यहीं, कल सुबह कहीं जाना हो सकेगा' बक्कस बोला और उसने भैंसकी पीठ परसे डेरेका सामान उतार कर नीचे रख दिया, यह वही जगह थी जहाँ आजसे एक साल पहले कम्मोकी लाश दफ़नाई गई थी।

कम्मोकी याद आते ही बक्कसका शरीर खौल उठा।

'बशीर, क्या देखते हो ? निकालो साँप, छोड़दो मन्त्र बोलकर, जब तक इस पापी ज़मीदारका नाश नहीं हो जाता मुझे चैनकी साँस नसीब नहीं होगी।'

'अच्छा' बशीरने कहा।

डोलचीमेंसे एक दरी निकाल कर सामने बिछाई, दूसरी डोलचीसे साँपकी हाँड़ी और तूँबी निकाल कर उसने दरी पर रखली, फिर काग़ज़की एक पुड़िया खोल कर सामने रखी, जिसमें पीली सरसों और कोई जंगली जड़ी थी। वह पालथी मार कर बैठ गया और कोई मन्त्र गुनगुनाता रहा, एकाएक उसने पास रखी तूँबी उठायी और साँपकी हाँड़ीका मुँह खोल दिया, तूँबीकी आवाज़ पर साँप फन काढ़ कर लहरा उठा। बशीरने सरसोंके बीज दोनों मुठ्ठियोंमें ले लिये, फिर दाहिनी हाथकी सरसों साँप पर मारते हुए बोला : 'तुम्हें उस्तादकी क़सम, नागराजकी क़सम, दुश्मन पर सीधे वार करना···जाओ···'

साँप हाँड़ीसे निकाल कर घासोंको चीरता हुआ चला, चल दिया।

'जाओ' दूसरी तरफ़ खड़ा बक्कस भी पागलकी तरह बड़बड़ाया, 'उस पापीका सर्वनाश हो। मेरी लड़की ही की तरह छटपटा छटपटा कर वह मरे, उसके कुलमें कोई पानी देने वाला न रहे, उसकी औरत बेवा होकर आठ-आठ आँसू रोये। उसके लड़के दर दरकी ठोकरें खाते फिरें···'

बशीरकी बाँई मुट्ठीमें सरसों बन्द थी, उसकी आँखोंमें लहराता हुआ साँप घूम रहा था।

'मुट्ठी ठीकसे बाँधे रहना बेटा' बक्कस बोला।

'हूँ' बशीरने कहा।

तभी उसकी आँखोंके सामने एक सफेद पर्दा नाच उठा, काली-काली मूर्तियाँ, कितनी स्वच्छ और सफेद, सब कुछ जैसे उसकी आँखोंके सामने चित्रकी तरह उभरता जा रहा था, आज ही की तो बात है।

दोपहरका समय था। जेठका तपता सूरज सिर पर आग उगल रहा था, साँपोंका तमाशा दिखाते-दिखाते बशीर थक चुका था, उसका हलक सूख रहा था, बक्कसने कहा था कि जाकर ठाकुरका घर देख आ और हो सके तो साँपको भी घर दिखा देना। ठाकुरके दरवाजेके सामने नीमका पेड़ था, उसीकी छायामें तमाशा हो रहा था। खेल खत्म हो गया, बशीरने अपना दुपट्टा फैला दिया। लड़के अपने-अपने घरोंसे चावल-चने लाकर दुपट्टे पर डालने लगे, ठाकुरकी पत्नी दरवाजेके पास खड़ी थीं।

'जा बेटा, ले आया तो डाल आ, डरता क्यों है' उन्होंने छोटे लड़केको पुचकार कर कहा। लड़का कुर्तेमें चावल लिये सहमते-सहमते सँपेरेके पास आया और चादर पर चावल डाल कर खड़ा हो गया।

'माँ जी, एक लोटा पानी मिल जाय' अनजाने बशीरके मुँहसे निकला। ठकुरानी भीतरसे पानी ले आईं, लड़केको लोटा देकर बोलीं, 'माधव, डाल आ बेटे, उनके कटोरेमें डाल आ पानी।'

लड़का फिर वैसे ही सहमता-सहमता बशीरके पास पहुँचा और उसने कटोरेमें पानी उँडेल दिया बशीर गट-गट सारा पानी पी गया, उसके शरीरमें फिरसे प्राण लौट आया।

उसने सुना ठाकुरका नन्हा-सा लड़का पूछ रहा था, 'क्यों बाबा! नागराज पानी नहीं पीता?'

'पीता है भैया', बशीरने कहा—'शामको पीता है' बच्चेकी बात पर ठकुरानी हँस पड़ीं, एक प्यारी मासूम हँसी। माधव अपने सवाल पर लजाया लजाया माँके पास आकर खड़ा हो गया और वह हल्की मुस्कराहट के साथ प्रसन्नतासे सँपेरेकी ओर देखने लगा, सँपेरेने पिटारी उठाई, सामने खड़ी ठकुरानी और उनके बच्चेको देख कर पता नहीं क्यों उसकी आखों-में आँसू आ गये। सारा दृश्य बशीरकी आँखोंके सामने नाच रहा था, फुफकारता हुआ साँप चला जा रहा, बशीरकी मुट्ठी बन्द थी, तभी पता नहीं क्यों वह जोरसे चिल्ला उठा—'ना, ना, यह सब न होगा, उसे रोको चाचा, ये सब बेकसूर हैं' बशीर बबड़ाया। उसकी आँखोंके सामने कम्मोकी लाश थी, बेबाकी साड़ीमें ठकुराइन खड़ी थीं, उनको उँगली पकड़ कर नन्हा-सा लड़का उसकी ओर देख रहा था 'क्यों बाबा! नागराज पानी नहीं पीता···।' बशीरके सिर पर पसीनेकी बूँदें छलछला आयीं।

तभी उसका हाथ लड़खड़ाया और उसकी मुट्ठी खुल गयी।

'तुमने यह क्या किया बशीर!' बक्कस धाड़ मार कर उसके हाथ पर गिर पड़ा, 'क्या तुम्हें मालूम नहीं था बेटा, कि दुश्मनको मार कर साँपके लौटनेके बाद मुट्ठी खोली जाती है, नहीं तो बीचसे लौटा साँप चलाने वालेको ही···।'

'जानता हूँ चाचा जानता हूँ' बशीर बोला—'तुम तो कहा करते थे कि नट छिप कर दुश्मनसे बदला नहीं लेता। यह तो कायरका काम है, एकदम कायरका, और फिर ठाकुरका बच्चा बेकसूर है, बच्चेकी माँ बेकसूर है···।'

तभी उसके मुँहसे एक चीख निकल गयी, उसके बायें हाथको उँगलीको साँपने काट लिया था और क्रोधसे उसकी ओर घूर-घूर कर देख रहा था, अँधेरेमें असफल-क्रोध साँपकी आँखें चिनगारीकी तरह चमक रही थीं।

'और काटो···और···' बशीरका चेहरा पसीनेमें सना था, आँखें उलट कर मुँह पर छा रही थीं, एक अजीब शान्ति उसके चेहरे पर थी।

'आज मैं भी उससे मिलूँगा···कम्मो···' और वह धड़ामसे जमीन पर गिर पड़ा, बक्कसने उसका सिर उठा कर अपनी गोदमें रख लिया।

'तू ठीक कहता था बेटा, नट कभी छिप कर अपना बदला नहीं लेता···यही सही, यही······' वह कुछ और कहना चाहता था पर कह न सका, उसकी आँखोंसे झर झर आँसू गिर रहे थे।

भग्न प्राचीर

'बलात् जिस अवरोधमें डाल दी गयी हूँ, उसीमें सन्तुष्ट हूँ। महाराज महेन्द्रने नया विवाह किया है। प्रसन्नताको व्यंग्य और उदासीको अपशकुन मानते हैं। अवरोध हमारा कवच है, लज्जा और घुटन हमारे अस्त्र। निश्चेष्ट पड़ी रहें तो मर्यादा, साँस लें तो बन्दी-गृहकी अर्गला झंकृत हो जाती है। स्नेह-हीन वर्तिकाकी तरह जल रही हूँ। श्री-चरणोंमें सेविका का प्रणाम।'

यह मूल संस्कृत पुरालेखका हिन्दी रूपान्तर है, जो एक ताम्रपत्रपर खुदा है। इस खंडित ताम्र-पत्रको देर तक देखनेके बाद डा० गुप्तने कागजमें लपेटकर पास रखी पेटीमें बन्द कर दिया।

कौशाम्बीकी खुदाईमें और बहुत-सी चीज़ोंके साथ यह ताम्रपत्र भी मिला था। इसे किसी अन्तःपुरिकाने पत्रके रूपमें अपने किसी सम्बन्धीको लिखा था। डा० गुप्तने इस पत्रको बड़े ध्यानसे पढ़ा। पढ़ते-पढ़ते दुखिया राजकुमारीके प्रति उसके मनमें वेदनाका प्रवाह-सा उठने लगा।

'बर्बरता की भी हद होती है' वे बुदबुदाये और फिर किसी गम्भीर विचारमें लीन हो गये। शायद सोच रहे थे कि इस पत्रांशसे इतिहास पर क्या प्रकाश पड़ सकता है।

'सरकार' डाक्टर साहबके नौकरने पर्दा हटाकर कहा, 'गोयल साहब आयी हैं।'

'अन्दर बुला लाओ', डाक्टरने स्वीकृति दी।

द्वारका पर्दा जरा-सा हिला। अपनी तरलायित साड़ीको सँभालती,

सैंडिल पर थोड़ा ज़ोर देती मिस गोयल भीतर आयीं, जैसे पानी-भरे फ़र्श पर चल रही हों। आते ही उन्होंने डाक्टरको नमस्कार किया और सामनेकी कुर्सी खींचकर बैठ गयीं।

डाक्टर अपनेको राजकुमारीकी यादोंसे अलग नहीं कर सके थे। उन्होंने ताम्र-पत्रको निकाला और उसकी हर पंक्तिको रुक-रुककर सुनाने लगे। एक बार उन्होंने बीच ही में गोयलकी नीलोफ़र-सी स्वच्छ आँखोंमें झाँककर प्रभावकी थाह ली और फिर उस पत्रके अन्य वाक्योंको पढ़कर उनका अर्थ बताने लगे।

पूरा पत्र सुनानेके बाद डाक्टर बोले, 'मिस गोयल, नारीके साथ इतनी बर्बरता शायद ही कभी हुई हो।'

गोयलने हामी भरी और इस नीरस विषयको बदलनेके लिए सामने टँगे हुए एक चित्र पर बात छेड़ दी। डाक्टरने नौकरसे चाय मँगायी। इधर-उधरकी बातें होने लगीं। गोयल चुपचाप गुलदस्तेमें सजी 'स्वीट-पी' के रंगीन फूलोंको देख रही थीं। जाड़ेका सूरज खिड़कीसे झाँकने लगा था। किरणकी एक पतली डोरी टूटकर गुलदस्तेपर लटक गयी थी। मिस गोयलकी आँखें चमकीं, उन्होंने मुड़कर देखा, डाक्टर एकटक उन्हींकी ओर देख रहे हैं। उन्होंने आँचल ठीक किया। मनकी नाना पर्तोंमें कहीं कोई सिलवट पड़ गयी थी। अचानक वे पूछ बैठीं, 'डाक्टर, आप यह काम कितने वर्षोंसे कर रहे हैं?'

'खुदाई वाले महकमेमें तो मैं कोई तीन सालसे हूँ, यों पुरातत्त्वमें मेरा छठा साल है। दो वर्ष तो केवल कलकत्ता म्यूज़ियममें पड़ा रहा।'

'अरे, तो यों कहें कि आपने अब तक हजारों गड़े मुर्दे उखाड़े हैं।' मिस गोयलने शरारतसे मुसकराते हुए कहा।

डाक्टर भी मुसकराने लगे, 'बोले—'मुर्दे भी उखाड़े तो आप लोगोंके लिए ही।'

'क्या मतलब!'

'आप फ़ारसीका वह शेर तो शायद जानती ही होंगी।'

'कहिए।'

डाक्टरने बड़े अन्दाज़से शेर पढ़ा, जिसका मतलब यह था :

'अरे ज़ालिम, तेरी नज़रकी तलवारने सबको क़त्ल कर दिया। अब भी तेरी प्यास न बुझी हो तो मुर्दोंको जिलाकर मार।'

मिस गोयल मुसकराने लगीं और आँखोंको और भी तिरछी बनाकर बोलीं, 'तो आपकी शुमारी किसमें है, मुर्दोंमें या ज़िन्दोंमें ?'

डाक्टरने गर्दन झुका ली, कहने लगे, 'जब शहीदोंके सिरोंकी गिनती हो, तो उसमें एक मेरा भी शामिल कर लें।'

'सरकार' नौकरने पुकारा।

'क्या है ?'

'बहूजीने कहा कि खाना तैयार है।'

'अच्छा अच्छा, कहो आता हूँ।' फिर मिस गोयलसे बोले, 'आज तो ज़रा जल्दीमें हूँ। आफ़िसका काम है। क्या आप शामको आ सकेंगी ? चौक तक चलनेका इरादा है। थोड़ी तफ़रीह रहेगी। आयेंगी न ?'

गोयलने गर्दन हिलाकर स्वीकृति दी। डाक्टर उन्हें अपनी फुलवारीमें घुमाते-घुमाते बाहर फाटक तक पहुँचा आये।

दिसम्बरकी शाम थी। ठंड काफी थी और शहर भरका कड़वा धुआँ, तारकोलकी काली सड़कपर पर्तें बिछा रहा था। फिर भी इस दमघोंट धुएँके जालको अनायास चीरकर लोगोंकी भीड़ चौककी ओर चली जा रही थी। इसी भीड़में डाक्टर, उनकी पत्नी सुशीला और मिस गोयल भी जा रहे थे। चौकके शुरूमें ही जौहरीकी दूकान है। जौहरी डाक्टर साहबका परिचित है, उन्हें देखते ही बोला, 'आइए साहब!'

डाक्टर रुक गये। जौहरीने ऊपर आनेका आग्रह किया।

'भाई, कुछ लेना नहीं है। तुम्हें बेकार तकलीफ होगी। मन भी मैला होगा।'

जौहरीने हाथ जोड़कर गर्दन झुका दी, 'सरकार, सजा जो देनी हो दें; पर ऐसी बातें न कहें। चीज़ें देख लें। अच्छी लगें तो लें, न लगें तो न लें। मुझे तो दिखा देनेमें ही संतोष हो जायेगा।'

'अच्छा भाई' दुकानमें घुसकर डाक्टरने कहा, 'दिखाओ कुछ।'

तरुण जौहरी तो जैसे अपना काम करके एक ओर हो रहा। उसका बुड्ढा बाप कुछ डिब्बे सामने रखकर बोला, 'देखें सरकार!'

नीले मखमलके डिब्बेमें हार था, एक गोल डिब्बेमें जड़ाऊ कंगन, और एक चौड़े डिब्बेमें नेकलेस। जौहरी उनके नवीनतम 'डिज़ाइनों' की खूबियाँ बता रहा था। उसने यह भी बताया कि एक महीनेके अन्दर ही सब नया माल उठ गया, यह तो आखिरी सेट है।

'चीज़ तो वाक़ई अच्छी है,' हारको देखते हुए डाक्टरने कहा, 'क्यों सुशीला, कैसा है?'

'अच्छा है' सुशीलाने डाक्टरकी आँखोंमें देखा। सहसा तितलीके परों-सी कोमल पलकें झुक गईं। जौहरी औरतोंकी मुद्राओंका साँस रोके अध्ययन कर रहा था।

'नाइस' मिस गोयल हारको अपने हाथोंमें ले कर बोलीं, 'सचमुच यह लाजवाब चीज़ है, मैं तो इसकी नक्क़ाशी पर फ़िदा हूँ। क्या सधे हाथ हैं!'

जौहरी मिस गोयलकी बात सुन कर उनकी ओर खिंच आया, 'पहनने वाले ही पहचानते हैं, सरकार!'

'सुशीला देवीको तो बहुत जँचेगा। लेना हो, तो बात कर लीजिए।'

'पर इन्हें तो कुछ नहीं चाहिए' डाक्टरने व्यंग्य किया, 'पतिव्रता स्त्रीका तो पति ही सबसे बड़ा आभूषण है।' कह कर डाक्टर ज़ोरसे हँस

पड़े। सुशीला भी मुस्करायी। गोयल अब भी हारको एक-टक देख रही थीं।

'अच्छा भाई, फिर कभी,' डाक्टर चलनेको तैयार हुए।

'क्यों जी, दाम क्या है इसका ?' गोयलने पूछा।

'दाम तो काफ़ी उतर गया है सरकार, एक आठ-सौमें आ जायगा।'

'अच्छा, अभी तो रखो,' गोयलने कहा और सभी दूकानसे चल पड़े। गोयलका घर बीचमें ही पड़ता था, वे उधरसे ही चली गयीं। डाक्टर और उनकी पत्नीको कुछ जरूरी चीज़ें लेनी थीं, वे थोड़ी देरमें लौटे।

दूसरे दिन सबेरे अभी मुश्किलसे आठ ही बजे थे। सूरजकी किरणोंमें छतकी ओस चमक रही थी। सुशीला आँगनमें स्टोव पर पानी गर्म कर रही थी कि डाक्टरने बुलाया।

कमरेमें घुसते ही सुशीलाने देखा कि तमाम चीज़ें अस्त-व्यस्त पड़ी हैं। डाक्टर अपने एक-एक कपड़ेको उठाते, कुछ ढूँढ़ते और फिर निराश होने पर उन्हें झटक कर ज़मीनपर पटक देते।

'क्या खोज रहे हो, मालूम भी तो हो ?' सुशीलाने पूछा।

'मेरे कोटमें पचास रुपये थे। मैं कबसे ढूँढ़ रहा हूँ कुछ पता नहीं।'

सुशीला खिलखिला कर हँसी, 'वे तो मैंने दरजीको दे दिए।'

डाक्टर उत्तरसे ज्यादा हँसी पर तिनक कर बोले—'दरज़ीको, किसने दिए ?''

'मैंने, तुम्हींने तो कहा था।''

'कहा था तो क्या, दरज़ी शहर छोड़ कर भाग रहा था ? कौन काम पहले होना चाहिए, कौन बादमें, तुम्हें ज़िन्दगी भर नहीं मालूम होगा।'

'तुम्हारे पिछले कोटकी सिलाई बाक़ी थी, गिड़गिड़ाने लगा, मैं क्या करती ?'

डाक्टरने सुना और चुपचाप कड़वा-सा मुँह बना कर कमरेसे बाहर चले गये।

आज सुशीला खाली थी। डाक्टर कह गये थे कि वे शामको थोड़ी देरसे आयेंगे। उसने कंधे पर शाल रखी और गार्डनमें टहलने लगी। उसकी इच्छा हुई कि थोड़ी देर सड़क पर घूम ले। उसके पैर अनायास उठते गये। रिक्शे मोटर, ताँगेकी भीड़को बचाती वह चलती गयी और उसे जब ख्याल आया, तो उसने देखा वह चौकके पास पहुँच गयी है। बार-बार प्रयत्न करने पर भी वह अपनेको रोक न सकी। वह हार उसके मनमें बस गया था। उसकी रौनक कितनी ताज़ी थी। उसने सोचा जौहरी से कह कर एक-दो दिन रुकवा देगी। यदि डाक्टरका मन अच्छा रहा, तो कभी इसे खरीदनेको कहेगी।

जौहरी उसे देखते ही बोला, 'कहिए, हार पसन्द आया?'

सुशीला दूकानमें जा कर एक ओर खड़ी हो गयी और बोली, 'हाँ, पसन्द तो है; पर दाम बहुत है।'

जौहरी खिन्न हो गया और बोला, 'तो क्या नहीं लेना चाहतीं?'

'नहीं, नहीं, ऐसी बात तो नहीं; पर एक-दो दिनके बाद ले सकूँगी।'

जौहरी हँसा, 'वह हार तो बिक गया।'

'बिक गया?' सुशीलाने घबड़ा कर पूछा।

'क्या आपको मालूम नहीं?' जौहरी अपनी हँसी रोक न सका, 'तो डाक्टर साहब आपसे भी मज़ाक करते हैं। अरे, वह तो दोपहरमें ही खरीद कर ले गये। किसी अच्छे मौक़ेकी ताकमें होंगे।' उसने कुटिलता से कहा।

सुशीला झेंप गयी और 'धन्यवाद' कह कर चल पड़ी। डाक्टरसे मिलनेके लिए वह व्यग्र हो उठी, 'कैसे आदमी हैं, कहा तक नहीं और खरीद लिया!' सुबहकी घटनासे वह खुद खिन्न हुई। दरजीको वह आसानीसे दो-चार दिन टाल सकती थी।

वह बरामदेमें पहुँची थी कि किसीने उसका हाथ पकड़ लिया ।

'ओ, मिसेज गुप्ता !' आवाज गोयलकी थी, 'क्या डाक्टर नहीं हैं ?'

'आपके यहाँ गये थे न ।'

'हूँ, नहीं, मैं तो उनको यह हार दिखाने आयी थी ।'

'हार ?' सुशीलाने देखा, वही हार मिस गोयलकी मुलायम गर्दनमें चमक रहा है ।

'कैसा है ?'

'बहुत अच्छा !' सुशीला बोली और खट्-खट् करती ज़ीनेसे चली गयी ।

रात बड़ी देर तक सुशीलाको नींद नहीं आयी । उसके मनके भीतर कोई चीज़ जल रही थी ! कोई गीली-सी चीज़ जिसका धुँआ उसके मस्तिष्कके स्नायुओंको बुरी तरह जकड़ रहा था । गला भर आया । डाक्टर किसी दूसरी औरतसे प्रेम करता है, यह उतना नहीं अखरा । उसे दुःख था कि डाक्टरने उसकी मासूमियतका अपमान किया, उसके भोले-पनकी प्रवंचना की । आज तक उसने डाक्टरकी किसी बात पर विचार नहीं किया । भले-बुरे सबको माथा टेक कर स्वीकार करती रही; पर आजकी घटनाने उसके तमाम विश्वासको ढहा दिया । पुरानी घटनाएँ एक-एक कर उसके सामने नाच उठीं ।

अभी पिछले सालकी बात है कि उसकी बड़ी बहनका लड़का उससे भेंट करने आया । लड़का पहले-पहल आया था सो उसकी विदाईमें उसने अपनी और डाक्टर की मर्यादाका उचित ध्यान रखते हुए एक कोट और पैंट सिला दिया । रुपये कुछ सौके क़रीब खर्च हो गये । डाक्टरने सुना, तो आग-बबूला हो गये । देर तक लड़ते-झगड़ते रहे । उसी दिन डाकियेने एक पारसलकी सूचना दी । डाक्टरने अपने गार्डेनके लिए विभिन्न विदेशी फूलोंके बीज, कई किस्मकी खाद आदि मँगाया था । पूरे एक-सौ पचासकी बिल्टी थी । इस पर न तो डाक्टरने ही ध्यान दिया और न तो सुशीलाने

कुछ कहा ही। स्वेच्छाचारिताकी हद थी; पर सब-कुछ इसीलिए कि डाक्टर कमाते थे और सुशीलाका उस पर कोई अधिकार नहीं था।

सुशीला इसी विचारमें खोयी थी। उसे लगा कि कोई उसके हाथ को छू रहा है।

'कौन ?'

'मैं हूँ।'

सुशीलाने समझ लिया कि डाक्टरको किसी-न-किसी तरह आभास मिल गया है। वह जानती है कि डाक्टर ऐसे मौकों पर क्या करते हैं ? वह चुप वैसे ही पड़ी रही। डाक्टरने बड़े प्यारसे उसकी बाँहको उठाया, 'हमें भी तो बैठने दो !'

डाक्टरने बड़े इत्मीनानसे बातें शुरू कीं। उन्होंने दरज़ीको दिये गये रुपयोंका ज़िक्र भी किया। अपनी भूलके लिए माफ़ी माँगी। पर उन्होंने हारका नाम तक नहीं लिया।

'क्यों, इतनी क्रूर हो ?' डाक्टरने गुदगुदाते हुए कहा, 'माफ़ी भी नहीं मिलेगी सरकार ?'

डाक्टरका यह सबसे बड़ा अस्त्र है। सुशीला उसे खूब जानती है। इस अस्त्रके सामने उसकी एक भी नहीं चलती। इस पर भी थोड़ी कड़ी पड़े तो डाक्टर प्रणिपात करेंगे। दो बूँद आँसू ढुलका देंगे, बस फिर क्या ? सुशीला विह्वल हो जायगी। अपनेको ही बुरा-भला कहने लगेगी। इस बार भी वही हुआ। डाक्टरने मान लिया कि सन्धि हो गयी। उसने चैनकी साँस ली। उसके मानसकी आँखोंमें फिर ताम्रपत्र वाली राजकुमारीकी छाया नाची, 'ओह, कितनी विवशता थी ! सुशीला भी तो वैसी ही है।' फिर तुरन्त अपनेको धिक्कारता, 'हुँ, कैसा बावरा हूँ मैं भी, कहाँ प्राचीरमें तड़पती राजकुमारी और कहाँ स्वच्छन्द सुशीला, दोनोंकी तुलना करना कितनी बेवकूफ़ी है।

व्यथा एक बार उठ कर बिना निशान छोड़े मिटती नहीं, काँटा निकल जाता है, फिर भी दर्द नहीं जाता। सुशीलाको उसने लाख समझाया, परन्तु उसके मनको राहत न हुई। वह सोतेमें चौंक जाती। गोयल की मूर्ति नागिनकी तरह कुंडली बाँध कर उसके पतिको गुंजलकमें छिपा लेती। वह रोती, आँसू गारती, अपनी दीनता और असहायता पर तरस खाती।

डाक्टरको सुशीला पहलेसे बदली हुई लगने लगी। अब वह उनको देखते ही विह्वल हो कर दौड़ती नहीं। सब काम वैसे ही होते हैं; पर जैसे कामके लिए काम हैं, उनमें कोई स्नेह, कोई रस नहीं। शामको अब सुशीला चाय ले कर नहीं आती, उसकी जगह पर नौकरानी आने लगी है। एक दिन आफिससे लौटते ही डाक्टरने पुकारा, 'सुशीला !'

'वे कहीं बाहर गयी हैं।' नौकरानी बोली।

डाक्टर धम्मसे कुर्सी पर बैठ गये। नौकरानी चाय ले आयी।

'क्यों, रोज़ चाय तुम्हीं बनाती हो ?'

'जी !'

'और सुशीला ?'

'मुझे मालूम नहीं, कहीं बाहर जाती हैं।'

'बाहर जाती हैं ?' डाक्टर चिल्लाये और उन्होंने कप पटक दिया 'ये सब नहीं चलनेका मेरे घरमें।'

उन्होंने उसी दिनसे रुपये-पैसेका सारा हिसाब अपने पास कर लिया। वे जानते थे कि यह क्षणिक प्रतिक्रिया है। दो-एक दिन रूठ कर फिर रास्ते पर आ जायेगी। न तो सुशीलासे अच्छी कोई औरत मिल सकती है, जो बिना कहे सब काम ठीक करे, न पतिने पत्नीके झगड़ेसे बाहर ही अच्छा प्रभाव पड़ता है। फिर भी डाक्टरके झुकनेका कोई सवाल न था।

थोड़ी कड़ाईसे सुशीला बकरीकी तरह सीधी हो जायगी, ऐसा उनका विश्वास था।

एक दिन शामको डाक्टर आफ़िससे थोड़ा पहले ही चले आये। देखा, सुशीलाके कमरेके सामने एक बक्स रखा है, उसमें कुछ नयी किताबें, रुमाल, काग़ज़ और दो-एक छोटी-मोटी अन्य चीजें पड़ी हैं। पास ही दाईका लड़का हाथमें रबड़के खिलौने लिये कूद रहा है।

'यह सब किसका है ?'

'मेरा है।' सुशीलाने धीरेसे कहा।

'इसीसे कहता हूँ यह मेरे यहाँ नहीं चलनेका।' डाक्टर जैसे निर्णय देने पर तुले हुए थे, 'यह फ़िजूलखर्चो मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता।'

सुशीला चुप थी।

'मैं तुम्हींसे पूछता हूँ।' डाक्टर चिल्लाये।

सुशीला भी क्रोध दबा न सकी, बोली, 'क्यों इसमें आठ सौके हारसे भी ज्यादा फ़िजूलखर्ची है ?'

डाक्टरका पारा भड़क गया, 'चुप रहो, जबान खींच लूँगा।'

'नहीं, सुन लो !' सुशीला कहती रही, 'मैं अब तुम्हारे पैसे पर नहीं जीती। मैंने भी नौकरी कर ली है। तुम समझते थे कि मैं तुम्हारी नौकरानी हूँ, मेरा कोई मूल्य नहीं, मेरा कोई वश नहीं। इसीलिए कि तुम कमाते थे, मैं खाती थी। तुम मेरी छाती पर मूँग दल सकते थे, परायी औरतोंसे आशनाई कर सकते थे; क्योंकि तुम कमाते थे। पर अब कान खोल कर सुन लो, जल्दी अपना रास्ता बदलो, वरना मुझे भी सोचना पड़ेगा। और यह सब सौदा काफ़ी महँगा पड़ेगा !'

डाक्टर अवाक् सुनते रहे। वे कटे वृक्षकी तरह कुर्सी पर गिर पड़े।

उनके सामने पेटीमें ताम्रपत्र झाँक रहा था। डाक्टरकी आँखमें राजकुमारी के लिए आदरके भाव उठे, 'ओफ़, कितनी सुन्दर, स्नेहमयी समर्पित, और सुशीला कितनी उग्र, कितनी प्रचंड !' पर डाक्टरने शायद यह नहीं सोचा कि राजकुमारी प्राचीरके अन्दर थी और सुशीला भग्न प्राचीरके द्वार पर।

शहीद-दिवस

बीते दिनकी बात है। घटना पुरानी है; पर कितनी ताज़ी।

१६४२ के सितम्बरकी तेरहवीं तारीख थी। दो दिनसे लगातार भयंकर बारिश हो रही थी, कस्बेका कोई समाचार न मिल सका। ग्या-रहवींकी शामको, जब कि सदा की भाँति लोग स्टेशन पर खड़े होकर आनेवाली गाड़ियोंका इन्तज़ार कर रहे थे, एक सैनिक-बोगी आई और फिर पटापट गोलियाँ चलीं। प्लेटफार्म पर कई लाशें मछलीकी तरह तड़-फड़ाने लगीं। बाज़ारकी दूकानोंपर लगी कर्कटें गोलियोंकी बौछारसे तड़तड़ा उठीं और जब रातके खामोश सन्नाटेमें लाशोंको लादकर बोगी चली गई, तो काले बादलोंसे आसमान फट पड़ा। भय, चीत्कार और डरावना अन्धकार। गरजते बादलोंकी छाँहमें जैसे सारा गाँव काँप उठता। घरोंके दरवाजे डरे हुए आदमीकी आँखोंकी तरह बन्द हो गये, कोई बाहर आकर यह पूछनेका साहस न कर सका कि गोली किसे-किसे लगी।

आज दो दिनके बाद बारिश बन्द हुई। पूरबसे सहमा-सहमा सूरज झाँकने लगा। मैंने दरवाजेके सामने अशोकके पेड़ोंकी छायामें चारपाई डाल दी और चुपचाप लेटकर आसमानकी गहरी नीलिमामें पंख पसारे तैरते बादलोंको देखता रहा।

'नमस्ते बाबू' मैंने गर्दन उठाकर देखा, वह हरी था। ग्यारहवींकी जिस शाम कस्बेमें गोली चली उसी दिनसे वह लापता था और हम उसके मारे जानेकी आशंकाको विश्वास मानकर इस अभागेकी आत्माकी शान्ति के लिए भगवान्‌से विनय कर चुके थे। सहसा हरीको सामने मूर्तिमान देखकर मैं आनन्दसे उछल पड़ा।

'बैठो बैठो, अरे हरी, तू कहाँ छिप रहा था भाई ?' मैंने पूछा। पर उसने कुछ उत्तर न दिया। उसके चेहरेपर हवाई उड़ रही थी, आँखें भयके आतंकसे पथरा गई थीं। 'बात क्या है हरी' मैंने उससे बहुत पुच-कारकर पूछा तो हकलाते हुए बोला कि अब वह दो ही एक दिनका मेहमान है। जाने कब कोई सिपाही आकर उसे पकड़ ले जायेगा और फिर एक मिनटमें देखते-देखते उसे गोलीसे उड़ा दिया जायेगा। मेरी समझमें कुछ न आया और मेरे पर्याप्त खोद-विनोदपर हरीने जो कुछ बतलाया उसका मतलब था कि जिस दिन कस्बेमें गोली चली उस दिन वह अभागा भी नियतिकी डोरीमें बँधा प्लेटफार्मपर चला गया। गोली तो उसे भाग्यवश न लगी; परन्तु उसने किसीसे सुना कि अंग्रेजोंके पास कोई ऐसी मशीन है जिसमें जब चाहे सामने खड़े आदमियोंकी तसवीर छप जाती है। उस हालतमें हरीकी भी तसवीर छप गई है और उसीके आधारपर अब उसे पकड़नेके लिए सिपाही आते होंगे।

मैं उसकी बातें सुनकर अपनी हँसी न रोक सका और उसे किसी तरह समझा-बुझाकर आश्वस्त किया। इस तरहकी मिथ्या बातोंसे केवल हरी ही सन्त्रस्त न था, न जाने कितने लोग इस तरहकी वाहियात बातोंसे इतने डर गये थे कि रातको नींदमें चौंक उठते थे, भयके मारे घिग्घी बँध जाती थी। भयके सागरमें डूबते-उतराते सारे गाँवमें यदि कहीं निर्भयता दिखायी पड़ती तो देवीचन्दके चेहरेपर। देवीचन्दका शरीर काफी थुल-थुल था। मांसकी एक-एक मोटी पर्त दोनों गालोंपर झूलती रहती। सरके बाल कनपटीके पास सिमट गये थे, ऊपर चिकना-सा खल्वाट सिर, मांसमें धँसी कौड़ीनुमा आँखें—और उनके पाससे सिरको चीरती हुई तिकोनी गाँधी टोपी। वे डरे लोगोंके पास जाकर खड़े हो जाते और फिर किसी पक्के गायककी तरह हाथ हिलाकर अदायगीके साथ भोंड़े सुरमें अलापते :

थानोंपर झण्डे फहराये जायेंगे
डण्डोंसे बन्दर भगाये जायेंगे।

बड़े-बूढ़े क्रोध और भयसे दिन-ब-दिन विकृत चेहरा बनाकर उनकी ओर घूर-घूर देखते। कोई भुनभुनाकर कहता कि यह लौंडा गाँवको कोल्हूमें पिरवाकर दम लेगा। अपने तो कोई है नहीं, रँडुवा, न मेहर न बच्चा; लेकिन दूसरोंकी जान लिये बिना यह मानेगा नहीं।

देवीचन्दकी बातें बड़ी मजेदार होतीं। कोई बूढ़ा सामने आकर कहता, 'अरे बेटा, ज़रा समझसे काम लो। ज़माना बुरा है। घरमें पड़े रहो भइय्या! सरकार और दई दोनों बराबर हैं। राजाके सामने हमारी एक न चलेगी। भला तोप-बन्दूकके सामने चरखेसे लड़ाई होगी?'

देवीचन्द बेचारे बुड्ढेकी ओर अपनी कौड़ीनुमा आँखें फेरकर बड़ी ही उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते; फिर थोड़ा खाँसकर कहते, 'दादा तुम भी बच्चों जैसी बात करते हो। तुमने सोचा होगा, गाँधी बाबाका चरखा भी बुढ़िया नानीके चरखेकी तरह लकड़ीका चरखा है। अरे दादा, उस चरखेकी बात न पूछो। उसमें सब मिलकर बारह डण्डे लगे हैं, हर डण्डेमें एक-एक टेलीफून लगा है, वहाँसे बारह देशोंको मुरंग जाती है। गाँधी बाबाने इधरसे घण्टी बजायी कि आँख झँपते देर नहीं इधरसे जापान, उधरसे जर्मनी, इधरसे रूस, उधरसे अमरीका फौज लिये अँग्रेजोंपर टूट पड़ेंगे' और फिर वे बेचारे बुड्ढेकी ओर अपनी आँखें नचाकर ठहाका लगा हो-होकर हँस पड़ते थे। वह गरीब बेचारा इनके अथाह ज्ञानमें ऊभ-चूभ होता अपनी हार मान कर चल देता।

शैतानका नाम लो और शैतान हाज़िर। यहाँ देवीचन्दके बारेमें सोच ही रहा था कि देखा वे सामने खड़े हैं। वही देह, वही टोपी। अकड़कर सिकन्दर महान्की तरह हाथमें बाँसकी लम्बी छड़ी लिये खड़े हैं। छड़ीमें लगा झण्डा उतारकर तह करके कुर्तेकी जेबमें डाल लिया था, कि कहीं गाँव-वालोंको सन्निपात न हो जाये वैसे भयंकर बुखारमें तो सभी कराह ही रहे थे।

'क्यों उस्ताद' मेरी चारपाईपर छड़ी ठोंककर देवीचन्द बोले, 'है कुछ हिम्मत, कि बस ? बिलरंखे फिरंगीने अपनी जेबसे निकालकर दो टो पटाखे छोड़ दिये; यहाँ बहादुरोंने सिरपर पैर ला रक्खा, लम्बी डींगें सभी हाँकते थे, है कोई माईका लाल ? था एक लालजी पट्ठा, शानसे सीना खोलकर खड़ा हो गया; ललकार उठा, 'भारत माताकी जय' और मेरे हाथसे झण्डा छीनकर आगे कूद पड़ा। बिलरंखेने फट्से गोली चलाई—एक दो…'

देखा देवीचन्दकी आँखोंसे झर-झर आँसू बरस रहे थे। मुझे तो विश्वास भी न हुआ कि ये आँसू—सफेद, साफ आँसू—देवीचन्दकी इन कौड़ीनुमा आँखोंसे निकले रहे हैं; वर्षाकी बूँदोंकी तरह आँसू गिर रहे थे और देवीचन्दके होठोंपर उत्साह और वीरताकी हँसी थिरक रही थी, वे बोलते गये…'तीन फैर किये सालेने; पर वाह रे पट्ठा। जब पैर धर दिया तो धर दिया, पीछे कौन हटे। खूनसे देह रँग गयी, तड़पकर जवान गिर उठा, मैं दौड़कर पकड़ूँ कि इ चककर बोला, 'पड़े खबरदार झण्डा झुकने न पाये, जाओ लाशके पास क्या बैठते हो, झण्डा उठा लो।'

देवीचन्द खामोश-सुनसान सड़ककी ओर देखते रहे, उनकी आँखोंमें उलझी बूँदें केतकीके फूलकी तरह टपक गईं, जैसे अंजलि भरकर फूलोंका उपहार दे रही हों। उन्होंने लम्बी साँस ली और सहसा मेरी ओर देखकर बोले, 'बोलो, चलते हो ?'

'हाँ चलूँगा।' मैं चारपाईसे कूदकर खड़ा हो गया।

'नहीं, आज तुम रुको, मैं कस्बेसे लौटकर शामको सारा प्रोग्राम बताऊँगा तो कल चलना।' मैं कुछ कहता ही कि उन्होंने अपनी बाँसकी छड़ी उठाकर कन्धेपर रख ली और चर्खेसे बन्दर भगानेवाला गीत गाते कस्बेकी ओर चल पड़े।

मैं चुपचाप उनके पैरोंकी ओर देखता रहा। इतने साधारण आदमीके पैरोंके वे असाधारण निशान आज भी मेरी आँखोंमें प्रकाशकी

लहरकी तरह अंकित हैं। हाँ, तो मैं वैसे ही बहुत देरतक सड़ककी ओर मुँह किये देवीचन्दको ताकता रहा। तभी सामनेसे एक आदमी मुड़ा और मेरे पास आकर खड़ा हो गया। उसके पीछे एक आदमी और था, सर-पर एक भारी-सा बक्स लिये हुए। एकदम पीछे एक कम उम्रकी लड़की थी। तीनोंके चेहरेपर भयके चिह्न उभर आये थे। सामनेवाला आदमी कस्बेका प्रसिद्ध सेठ गिरधरदास था, जिसका भारी शरीर भय और कई मीलकी पैदल यात्राके कारण बहुत बेडौल लगता था। वह मुझे एकटक हक्का-बक्का देखता रहा और फिर हकलाकर आधी आवाजको भीतर ही घोंटते हुए बोला, 'ठाकुर साहब नहीं हैं क्या ?'

'हैं तो, आप ठहरिए, भीतर हैं बुलाता हूँ।'

'नहीं बेटा' सेठ बोला, 'बाहर बुलानेका क्या काम, हम उनके पास ही चले चलते हैं।' और फिर बक्सेवाले आदमीको तथा पीछे खड़ी भीत हरिणीकी तरह सकपकाई उस लड़कीको चलनेका संकेत कर सेठ मेरे साथ चल पड़ा।

बाहरी दरवाजेपर आदमियोंके पैरोंकी ध्वनि सुनकर पिताजी स्वयं आ रहे थे, सो निकसारमें ही उनसे भेंट हो गई। उनको देखते ही सेठ दोनों हाथ जोड़कर पैरोंकी ओर झुकनेको हुआ कि पिताजी 'हैं-हैं' करते उसका हाथ पकड़कर बोले, 'सब लोग कुशलसे तो हैं न सेठजी ? आप इतने घबराये क्यों हैं ?

'कुशल कहाँ ठाकुरसाहब' सेठकी आँखोंमें आँसू आ गये, अब तो हम आपकी शरण हैं रक्षा कीजिए। चारों ओर आखें पसारकर देखा, पर डूबतेको कोई दूसरा ठिकाना नहीं दिखायी पड़ा, तो आपकी शरण आये। आढ़तपर पुलिसकी आँख है। जानते ही हैं आप, जो नया कलक्टर आया है वह कितना जालिम है, आढ़तको लूटना, तिजोरी तोड़ना, औरत-बच्चोंको सताना तो मामूली बात है। यह मेरी लड़की है सोना··· और अब हमारी सबकी लाज आप ही के हाथ है।'

बाबूजी चुपचाप सुनते रहे, फिर बोले, 'खतरा तो यहाँ भी है सेठजी, पर आप आये तो कैसे लौटा दूँ। अब चाहे जो हो, आपको जगह देंगे ही।' और फिर मेरी ओर देखकर बोले, 'लल्लू, सेठजीको भीतरकी कोठरीमें ले जाओ, बक्सेको कोठेपर रखवा देना। तुम भी चली जाओ बेटी, हमारे रहते डरनेकी कोई बात नहीं है।'

'आज तो गोली-वोली नहीं चली न ?' मैंने सेठसे पूछा।

'गोली तो कल ही चली थी बेटा, पर आज भी मिलेटरी आई है, चारों ओर त्राहि-त्राहि मची है, बड़ी साँसत है, बारे हम तो बहुत करके निकल पाये। खेतोंके बीच छिपते-छिपाते किसी तरह यहाँ पहुँचे।'

मैं सेठको लेकर घरमें घुसा तो मेरी आँखोंके सामने देवीचन्दकी तस्वीर घूम गई जो अभी-अभी जान-बूझकर बिना खौफ मौतके मुँहमें चले गये हैं। उनको मिलेटरी-पुलिससे क्या डर !

'दारोगा भी मामूली हरामी नहीं है' 'सेठ बड़बड़ाये 'कितनी आव-भगत करते थे हम उसकी, कलिया-गोस्त, मुर्गा-अण्डा, सलामी-भेंट, क्या नहीं दिया। उसकी लड़कीकी शादीपर पाँच-सौ रुपयेका नेकलस भेंट किया; पर साला जुलाहा-धुनियाकी जात कहीं पोस मानती है। और बेटा हमने किया भी क्या ?' सेठ अपने निर्दोष होनेका प्रमाण देते हुए बोले, 'न ऊधोका देना न माधोका लेना। न तो हम झण्डे गाड़ने गये न लैन उखाड़ने···अरे भाई, हमसे इससे क्या मतलब ? कोई नृप होय हमेंका हानी, सुना लुच्चा थानेदार कहता था कि स्टेशनके मालगुदामका सामान हमारी आढ़तमें रखा गया। माना कि रखा गया। दूसरी जगह भी कहाँ थी ? और इसके लिए तो सरकारको हमारा एहसानमन्द होना चाहिए कि हमने गल्लेको आढ़तमें रखवा लिया, नहीं बरखा-बुन्नीमें सड़-सूड़कर किनारे हो गया होता। हम कोई चोर-डाकू हैं नहीं, अपना गल्ला ले जाओ, बात खतम।'

दोपहर हो चुकी थी, मैं फिर उन्हीं अशोक-वृक्षोंकी छायामें लेटा इस आफतके विषयमें सोच रहा था। सामने पेड़पर बैठी छोटी-छोटी गौरैयें चीं-चीं कर रहीं थीं, उनके समाजमें कोई आफत नहीं। अलग-अलग दौड़कर दाने चुना, छोटी-छोटी चोंचोंमें भरकर बच्चोंको खिलाया, फिर निर्द्वन्द्व भावसे विशाल आसमानमें फुर्र-से उड़ती रहीं, फुर्सत मिली तो किसी वृक्षकी हरी फुनगीपर मस्तीके झूले-झूलकर गाती रहीं।

मेरी आँखें नीले आसमानमें पंख फैलाये बेखौफ उतरते चीलको देख रही थीं कि तड़-तड़, झन-झन करता एक बड़ा-सा ताँगा मेरे दरवाजेपर आकर रुका। मैं चौंककर खड़ा हो गया। ताँगेसे बड़ा दारोगा और पाँच कान्स्टेबल उतरकर मेरी ओर ही आ रहे थे।

'ठाकुर साहब कहाँ हैं जी लड़के?' थानेदार डरावनी आँखोंसे घूरते हुए बोला।

'भीतर हैं, बुलाता हूँ।'

'नहीं तुम ठहरो, हम खुद बुला लेते हैं···' और उसने सिपाहियोंको मेरे मकानके आगे-पीछे खड़ा कर दिया और बाबूजीको पुकारने लगा।

बाबूजीको सामने खड़ा देख थानेदार बोला, 'ठाकुर साहब आपको सेठ गिरधरदासका पता है?'

'गिरधरदासका?'

'हाँ-हाँ गिरधरदासका, हमारे हल्केमें दो ही तो बागी हैं—एक ओ गान्धीटोपीवाला काना देवीचन्द और दूसरा सेठ गिरधर। दोनोंकी हेकड़ी न भुला दी तो पठान नहीं। खैर, मुझे सख्त अफसोस है साहब' थानेदार दरवाजेके भीतर घुसकर बोला, 'आपके घरकी तलाशी होगी।'

बाबूजी कुछ कहते कि थानेदार और दो कान्स्टेबल मेरे घरमें घुस पड़े। थानेदारने घरका कोना-कोना छान डाला पर कोई सुराग न लगा

लाचार बाहर निकलनेको हुआ तो माँके पास सिकुड़ी-सी सोनाको देखकर बोला, 'यह लड़की कौन है जी।'

'मेरी बहन' मैं चटसे बोल उठा।

मेरे तमतमाये मुँहको देखकर थानेदार हँसा और बोला, 'अच्छा, अच्छा !'

निकसारमें एक बार थानेदार बगलकी कोठरीकी ओर मुड़ा।

'इसमें क्या है ठाकुर साहब ?'

'भूसा है।'

बगलसे सिपाहियोंने अपने लोहबन्नेसे दो-चार गच्चे दिया और फिर बोले, 'भूसा है।' गोया कितनी मामूली चीज़ है, और कैसे गरीब हैं ये लोग जो भूसेको घरमें रखते हैं।

'अच्छा साहब, आदाब अर्ज' थानेदारने बगलमें लटकी पिस्तौल को टटोला, और फिर ताँगेपर बैठकर अपनी गुच्छेदार मूँछोंको हवामें फहराता चला गया।

एक घण्टे बाद।

'सेठजी' भूसेवाले घरके दरवाजेसे बाबूजी बोले, 'निकलिये, गया हरामी।' उन्होंने बगलसे जोर लगाकर एक पटरा खींच दिया, बहुत-सा भूसा भहराकर गिर गया।

सुरंगनुमा दरवाजेसे नेवलेकी तरह झाँकते हुए सेठ बोले, 'गया साला जुलाहा ?' उनके केशहीन सिरपर भूसेका गर्दा बर्फकी पर्तकी तरह जम गया था। उनकी मूँछें, बरौनियाँ और भवें बिलकुल सफेद हो गई थीं।

'दम घुटते-घुटते बची ठाकुर साहब' सेठजीने खीसें काढ़कर कहा, 'आपका एहसान जन्म भर नहीं भूल सकता।'

'कोई कष्ट तो नहीं हुआ न ?'

'कष्ट, अरे साहब, यह तो कहिए कि आपने उधरकी दीवालमें छेद करा दिया था, नहीं तो मुश्किल था।'

'बात यह हुई कि आपके आनेके बाद कस्बेसे देवीचन्दने एक आदमी भेजकर मुझे आगाह कर दिया था।' पिताजी बोले।

'देवीचन्दको कैसे मालूम हुआ ?'

'यह तो वही जानें, सुना होगा कहीं। देवीचन्दसे कोई बात छिपी थोड़े रहती है! उन्हें अपनी गिरफ्तारीसे ज्यादा औरोंकी फिकर रहती है।'

खाना खानेके बाद जब मैं चलनेको हुआ तो देखा सोना शरारतसे मुस्कराती हुई मेरे सामने खड़ी है। मेरी ओर तिरछी आँखोंसे देखते हुए बोली, 'क्यों, मैं तुम्हारी बहन हूँ ?'

'थानेदारने तो सही समझा...' मैंने कहा।

वह शायद पूछना चाहती थी कि मैं क्या समझता हूँ, तभी माँ आ गयीं और बात बदलकर तलाशीपर आ गई।

पिछले दिनों गिरधरदासने क्या-क्या किया यह तो किसीको मालूम नहीं किन्तु एक दिन कस्बेसे उनका नौकर आया और उसने थानेदारका एक कागज़ दिखाया जिसमें लिखा था कि गिरधरदास कहीं भी हो अपनी आढ़तमें लौट जायें क्योंकि उनपरसे वारण्ट उठा लिया गया है। उस दिन सेठजीकी खुशीकी सीमा नहीं दिखाई पड़ती थी। उन्होंने जल्दी-जल्दी अपना बक्सा उतरवाया, चीजोंको देखा-भाला, बक्सेको नौकरके सिरपर उठाया और सोनाको बुलाकर कस्बे चलनेको कहा।

'थोड़ा रुक न जाइये सेठजी, खाना-पीना हो जाने दीजिए। मैं बैलगाड़ी मँगवा देता हूँ। आरामसे चले जाइए...' पिताजी बोले।

'अब आपको और कष्ट न दूँगा ठाकुरसाहब। गाड़ी-वाड़ी भेजनेमें खतरा है, हम जैसे आये थे वैसे ही चले जायेंगे।'

उसी दिन सेठ अपनी लड़कीके साथ कस्बे चले गये; माँ लड़कीके बारेमें और पिताजी सेठके बारेमें प्रशंसाका पुल बाँधते। चलते वक्त सेठने प्यारसे मेरी पीठ ठोंकी, हमारी दयाको सराहा, आपद-विपदमें भूल न जाने की कसम ली और हमारे एहसानके लिए बार-बार कृतज्ञता प्रकट की। सेठ के होनेसे हमें हर क्षण खतरा था किन्तु उनके चले जानेसे जैसे उत्तर-दायित्वके बोझके न होनेसे उदास जैसा लगने लगा। उन्हीं दिनों देवीचन्द की गिरफ्तारीकी खबर सुनकर गाँवभरमें मातम छा गया। वे बूढ़े, जो रोज़ाना उनकी मौतकी मनौती मानते थे, आँखोंमें आँसू लाये बिना न रहे। सबके चेहरेपर अभागेके लिए करुणा उमड़ आयी। कुछ नवयुवकों में जोश भी आया। पर बात हाथसे जा चुकी थी, लोग मन मारे चुप रह गये। मुझे रह-रहकर उस ख्यालसे और भी पीड़ा होती कि देवीचन्दने जानकर अपनेको खतरेके मुँहमें फेंक दिया। वे अपनी गिरफ्तारीकी बात पहलेसे ही जानते थे, इसी कारण उस दिन मुझे अपने साथ नहीं ले गये।

कई महीने बाद सहसा एक दिन सुना कि देवीचन्दपर मुकदमा चल रहा है। पुलिसकी ओरसे उनपर मालगोदाम लूटने, स्टेशन फूँकने आदिके अभियोग लगाये गये हैं। बड़ी हिम्मत करके हम छिप-छिपाकर कस्बे गये। कचहरी उदास और सुनसान लगती थी। डरके मारे कोई पास न जाता था। उस दिन सामने खड़े देवीचन्दको देखा तो जैसे विश्वास न हुआ कि यह भारी-भरकम शरीर वाले देवीचन्द ही हैं। शरीर सूखकर काँटा हो गया था, कौड़ीनुमा आँखें हड्डियोंके कोटरमें धुस गई थीं जिनमेंसे सोयी चिनगारीकी तरह मद्धिम चमक दिखायी पड़ जाती थी। हमें देखकर सहसा उनके अधरोंपर खोयी हँसी लौट आयी।

'क्या यह सच है कि मालगुदाम लूटनेवाले दलके तुम नेता थे?' सरकारी वकीलने पूछा।

'मैं नेता ज़रूर था' हड्डियोंके ढाँचेमें जोश-सा उमड़ पड़ा; 'पर

मालगुदाम लूटनेवाले दलका नहीं, आज़ादीके लिए जान हथेलीपर लेकर आगे बढ़ने वाले दलका। सरकारी इमारतोंपर झण्डा फहराना हमारा काम था, चोर-उचक्कोंकी तरह सामान लूटना नहीं!'

थानेदारने देवीचन्दको लुटेरोंका नेता बताते हुए लम्बा बयान दिया और कहा 'हुजूर, कस्बेके लोग उसका गवाह हैं, जिन्होंने देवीचन्दको मालगुदाम लूटते देखा है।'

और तब गवाहके रूपमें कस्बेका एक आदमी हाजिर किया गया, जिसे देखकर मेरा माथा शर्मसे नीचे झुक गया, लगा कि देवीचन्दकी उस तमाम सासतके मूलमें हमी हैं; मनुष्यताका इतना पतन भी हो सकता है, ऐसा कोई सोच भी नहीं सकता।

'देवीचन्दको मालगुदाम लूटते मैंने अपनी आँखसे देखा' गिरधरदास ने कहा, 'हुजूर कस्बेमें जो कुछ भी उत्पात हुआ, देवीचन्द ही उसके अगुवा थे।'

पता नहीं देवीचन्दको दोषी सिद्ध करनेके लिए गिरधरदासने और कौन-कौन सी कहानियाँ सुनाईं किन्तु लज्जासे झुकी गर्दन भी दर्द करती है, और उस दर्दको झुठलानेके लिए जब हमने सामने देखा तो ठठरियोंके ढाँचेके मुँहपर एक अजीब हँसी खेल रही थी। देवीचन्द बड़े आनन्दसे सेठकी बातें सुन रहे थे जैसे कोई बड़ा-बूढ़ा दुधमुँहे बच्चेके मुँहसे नानीकी कही कहानी सुनता हो।

'तुम्हें कुछ कहना है?' अन्तमें जजने देवीचन्दसे पूछा।

देवीचन्दने अपनी गर्दन हिलाकर कहा—'नहीं' और एक बार गिरधरदासकी ओर देखकर मुस्करा पड़े।

देवीचन्दको राजद्रोह, लूट-पाट आदिके अपराधके लिए पाँच सालकी सख्त सजा हुई।

३० जनवरी। गांधी-निर्वाण दिवस। सारे मुल्कमें इस पुण्यतिथिको हम शहीद-दिवस मनाते हैं। मैं अनजाने फिर आज इन अभागे अशोक के पेड़ोंके नीचे चारपाई डालकर बैठ गया हूँ, पत्तोंकी झालरोंके पीछे, नीले आकाशको देखता हूँ। पिछले इतिहासका यह खूनी पन्ना उलट गया है अचानक माफ कीजिएगा, मेरा मन ऐसे अवसर पर दबे घाव कुरेदनेका हर्गिज नहीं था—

सामनेकी सड़कसे मोटरोंका एक जुलूस गुजर रहा है। रामधुनसे सारा वातावरण शराबोर है। कस्बेके लोग हाथोंमें फूल-मालाएँ लिये खड़े हैं। बापूकी जयकारके नारे लग रहे हैं। अगली मोटरपर अर्धनग्न बापूकी मुस्कराती तस्वीर मालाओंसे लदी हुई है। उसको सँभाले हुए खड़े हैं कस्बेके प्रसिद्ध समाजसेवी गिरधरदास। भक्तिका समुद्र उमड़ रहा है। लोग फूल-मालाएँ फेंक रहे हैं। दासजी उन्हें उठाकर तस्वीरपर सजा देते हैं।

मोटरोंके पीछे गर्दका गुब्बार खड़ा हो गया है—बवण्डरका एक पर्दा जिस पर सिकन्दर महान्‌की तरह अकड़ी हुई एक छाया खड़ी है, देवीचन्दकी आत्मा। उनका शरीर जेलके सीखचोंमें टूट गया था, आत्मा चहारदीवारी बेधकर मुक्त हो गयी थी। वे मुस्कराकर हमसे पूछते हैं, 'क्यों उस्ताद, शहीद-दिवसके जुलूसमें नहीं चलोगे?' मैं उत्तर देनेके लिए उठना चाहता हूँ, किन्तु वे भले आदमी रुकते कहाँ हैं वैसे ही अकड़े हुए मोटरोंकी गर्दके पर्देपर दौड़ते चले जाते हैं! जुलूसमें लाउडस्पीकरपर कोई गा रहा है :

शहीदोंकी चिताओंपर जुटेंगे हर बरस मेले।
वतनपर मरनेवालोंका यही बाकी निशाँ होगा॥

हाथका दाग

प्रिय रेखा,

आज तुम्हें एक ऐसा दिलचस्प किस्सा सुनाना चाहता हूँ जिसने पिछले दो हफ्तेसे मेरे दिमागको बेचैन कर दिया है। मैंने तुमको अपनी पिछली चिट्ठीमें ही लिखा था कि मैं बनारसमें एक धर्मशालामें रहता हूँ। यह धर्मशाला शहरके एक गन्दे हिस्सेमें है। आसपास शंकर, गणेश और न जाने कितने देवताओंके छोटे-बड़े पचीसों मन्दिर हैं, सबमें फूल-माला चढ़ती है, चन्दन-धूपसे पूजा होती है; पर भाई सच पूछो तो इस मुहल्ले की गन्दगी और बदबूको यह सब कुछ ढाँप सकनेमें बिलकुल असमर्थ है। ईश्वरकी कृपा ही समझो कि मुझे कमरा धर्मशालाकी ऊपरी मंजिलमें मिल गया। धर्मशाला यों काफी पुरानी है, हर कमरा काला, गन्दा और ताजी हवाके अभावमें दमघोंट है, पर ऊपरी मंजिलके कमरे इस मानीमें थोड़े अच्छे हैं, क्योंकि इधर-उधरसे भटककर कभी साफ हवा भी आ ही जाती है। मैं यह जरूरी समझता हूँ कि इस किस्सेको शुरू करनेके पहले इस धर्मशालाकी पूरी हुलिया बता दूँ, वरना सम्भव है कि तुम इस किस्सेको ठीकसे समझो ही नहीं।

मैं जिस मंजिलपर रहता हूँ उसपर यों तो कुल आठ कमरे हैं, पर यात्रियोंको केवल सात कमरे दिये जाते हैं क्योंकि एक कमरा सीढ़ियोंसे लगा है और इस मंजिलके लिए यह निकसारका काम देता है। ये आठों कमरे बराबर लम्बाई-चौड़ाईके, दो-दो हर दिशामें बने हैं जिनके दरवाजे सामनेकी ओर हैं और इनके आगे आँगन है जो ऊपरी मंजिलसे झाँकनेपर और भी अधिक छोटा दिखाई पड़ता है। यह सीढ़ियोंवाला

कमरा मेरे कमरेके ठीक बगलमें पड़ता है। इसीसे जीनेसे आने-जानेवाले हर आदमीके पैरोंकी आहट बरबस मेरे कानोंको अपनी ओर खींच लेती है। ये सीढ़ियाँ बड़ी ही सँकरी और कम चौड़ी हैं इसलिए चढ़ते-उतरते समय बड़ी सावधानी बरतनी होती है।

मैं जिस दिन इस धर्मशालामें आया, यह किस्सा उसी दिनका है। गाड़ीसे उतरनेके बाद मुझे करीब एक घंटा लग गया और अनुमान है कि उस समय करीब सात बज रहे होंगे। द्वारपर मुझे धर्मशालाका चौकीदार मिला। इसीसे कमरेके बारेमें पूछताछ की और अकसर जैसा होता है, थोड़ी नाहीं-नूहीं, मिन्नत-आरजू और थोड़ी पूजा देनेपर मेरे लिए एक कमरा ऊपरी मंजिलपर मिल गया। चौकीदारने दूरकी बत्तीके धुँधले प्रकाशमें मुझे नीचेसे ऊपरतक देखा और फिर बड़ी खुशीसे उसने मेरा बक्स और बिस्तर उठा लिया। कमरा साफ हुआ, बिस्तर लगा और दिनभरका थका-हारा मैं थोड़ा आराम करनेकी गरजसे कमरेकी एकमात्र खिड़कीके पास बैठ गया। यह खिड़की सच पूछो तो मेरे लिए राहत थी। यह पासके एक साफ-सुथरे मकानके सामने खुलती थी जिसके बगलमें शंकरजीका एक मन्दिर था जिसके पीले कलश मुझे बहुत अच्छे लगते थे। मैं इस खिड़कीसे मन्दिरकी पताकाओं, सड़कके खंभों आदिको देख ही रहा था कि चौकीदारने पुकारा, 'बाबूजी !'

'अयं' मैं एकाएक मुड़ा। देखा, चौकीदार मेरी ओर कुछ प्रयोजन-पूर्ण आँखोंसे देख रहा है। उसके चेहरेपर ईषत् मुस्कान भी थी।

'क्या है भाई' मैंने कहा।

'जी सरकार, उधर……।'

उसने मुखको थोड़ा विकृत किया; पर सच कहो तो उसकी वह मुद्रा मुझे बड़ी बुरी लगी। इसीसे मैंने थोड़े क्रोधसे पूछा, 'साफ क्यों नहीं कहते।'

लगा जैसे वह डर रहा है। मैंने उसे ढाढ़स देकर कहा, 'कहो न, इसमें डरनेकी क्या बात है?'

वह अपने बालोंको खुजलाने लगा, फिर बोला, 'क्यों सरकार, सामनेवाले मकानमें कुछ देखा।'

'नहीं तो!'

'हँ हँ हँ हँ' चौकीदारने फिर मुँहको विकृत बनाया, 'बड़ी सुन्दर है। जवान है बाबू! बड़ी गरीब है। माँ-बाप कोई नहीं बेचारीके। बड़ी दुखिया है।' चौकीदारने हमदर्दीकी-साँस ली—'क्या करे, किसी तरह मर-जीकर दिन काट लेती है।'

मैं सुनता रहा। चौकीदारको जैसे कुछ याद आया, बोला, 'क्यों सरकार, अभी तो आपने कुछ खाना-पीना भी तो नहीं किया।' उसने अपने कान पकड़े—'मैं भी क्या ले बैठा, सरकार, तो कुछ हुक्म है?'

मुझे खानेकी कतई इच्छा न थी, पर चौकीदारके पूछनेपर थोड़ी भूख लग ही गई। मैंने एक रुपयेका एक नोट फेंकते हुए कहा, 'लेते आओ कुछ, जरा अच्छा रहे।'

चौकीदारने रुपया उठाया और चुपचाप चला गया। मैं फिर उसी खिड़कीसे देखने लगा। सहसा मेरे सामनेके मकानकी खिड़की जो मेरी खिड़कीकी ओर ही खुलती थी, खुली। एक अट्ठारह-उन्नीसकी तरुणी थी वह। सफेद साड़ी पहने, बाल सब छूटे थे, उसकी पीठपर झूलते हुए। उसने कमरेसे दो-एक चीज़ें उठायीं। खिड़कीको फिर बन्द किया और चली गई। लड़की अच्छी थी और उसकी चाल-ढालमें आकर्षण था। तभी जीनेपरसे धम्म-धम्म शोर हुआ। मुझे लगा, चौकीदार फिर आ रहा है, मुझे कुछ उपदेश सुनायेगा। तभी एक प्रौढ़ सज्जन और उनकी स्त्री ऊपर आयीं। स्त्री बिना मेरी ओर देखे बगलके कमरेकी ओर मुड़ गयी, मैं भी उसे अच्छी तरह देख न सका। मेरा दरवाजा खुला देख और आगन्तुकके आकर्षणके कारण वे मेरे कमरेके दरवाजेपर आकर

खड़े हो गये। मैंने उन्हें भीतर बुला लिया। बड़ी देरतक बातें हुईं। मालूम हुआ कि वे अपनी पत्नीके साथ दो महीने पहले बनारस आये। यों ही, कुछ काम-धाम नहीं है। पत्नीके पास पैसे ज्यादा हैं। बेचारी कामधेनु है। उनकी हर इच्छा पूरी कर देती है। और चाहिए ही क्या।

सच पूछो तो, यह आदमी मुझे बड़ा सीधा लगा, तुम इसे थोड़ा बेखबर और भोला भी कह सकती हो। अपनेको पूरी तरह स्त्रियोंके ऊपर छोड़ देनेवालोंको और कहा ही क्या जा सकता है। वे सज्जन चले गये थे। मैं अकेला कमरेकी दीवारोंको देख रहा था।

थोड़ी देर बाद ही चौकीदार एक दोनेमें पूड़ियाँ, सब्जी और कुछ मिठाइयाँ लेकर आ गया। सामनेकी कुर्सीपर सारा सामान रखकर उसने फिर मेरी ओर रहस्य-भेदिनी दृष्टिसे देखा। मैं भी इस बार बिना झिझके उसकी ओर देखता रहा और उसे पास ही बुलाकर पूछने लगा—

'क्यों जी, तो वह तरुणी कैसे खाती-पीती है?'

उसने कुछ अच्छा-सा अर्थ लगाया। कुछ चेहरेको विकृत बनाया। फिर पूछ बैठा, 'क्यों बाबू, देखा आपने? रातका समय है, साफ तो नहीं देखा होगा।'

'हाँ देखा, तुम ठीक कहते हो, साफ तो नहीं देखा।'

'तो क्या देखना चाहते हैं?' उसने कहा और तुरन्त जीभ काट ली।

'हाँ जी, क्या वह यहाँ आ सकती है?'

मेरे पूछनेपर उसे शायद आश्चर्य हुआ; पर उसने बड़ी खुशीसे गर्दन हिलायी। कहने लगा, 'आयेगी क्यों नहीं बाबू, लेकिन हुजूर······'

'हाँ, तुम्हारी मजदूरी मिलेगी। उसके लिए भी तुम कह सकते हो।'

'नहीं-नहीं सरकार, अपने लिए तो वह खुद माँग लेगी।'

'अच्छा तो फिर ले आना।—रेखा, तो तुम जरा गौरसे सुनो। तुमसे मैं कुछ छिपाता नहीं इसीलिए कह रहा हूँ कि रातके करीब ग्यारह बजे

मेरे कमरेकी कुर्सीपर वह बैठ गयी, हाँ जी, बैठ गई। पहले तो मैं बड़ा परेशान हुआ। फिर पूछा, 'तुम्हारा नाम?'

'निर्मला' वह बोली।

पर सच पूछो तो मैं उसकी ओर देखनेका साहस ही न कर सका। सहसा वह उठी और उसने बत्ती बुझा दी।

'हैं-हैं, यह क्या कर रही हो' मैंने कहा, और मैंने 'स्विच आन' कर दिया। उसने अपना मुँह फेरकर छिपा लिया।

'अच्छा यह लो' मैंने एक पाँच रुपयेका नोट उसकी ओर बढ़ाया, 'तुम ऐसा क्यों करती हो?'

'न-न-न' उसने पहले तो नहीं लिया, पर मेरे कहनेपर उसने हाथ फैलाया। उसके हाथमें ठीक हथेलीके बीच एक काला दाग था। उसने झटकेसे रुपये लेकर हाथ खींच लिया।

'गरीबीकी वजहसे' उसने रटा-रटाया कोई वाक्य दुहरा दिया और बहुत देरतक नीचेकी ओर देखती रही।

'अच्छा तुम जा सकती हो।' वह पहले तो कुछ आश्चर्यसे देखती रही, पर तुरन्त उठकर चली गई।

मैं इस तरुणीके बारेमें रात बड़ी देरतक सोचता रहा। सुबह ज्यों ही नाश्ता करने बैठा, बगलके महाशय आ गये। गप्पें शुरू हो गईं। वर्तमान राजनीतिसे लेकर बेकारीकी समस्या, नौकरी और न जाने कितने विषयोंपर बात होती रही।

बड़ी देरके बाद जब चौकीदार खानेके लिए पूछने आया तो देखा बात राजनीतिसे हटकर हस्तरेखा पर आ गई है और ये महाशय मेरे सामने हाथ फैलाये मेरे मुँहसे निकले अंट-शंटको वेद-वाक्य मानकर सुख-दुःखके सागरमें गोते लगा रहे हैं। उन्होंने उसी बहावमें चौकीदारको डाँट भी दिया, उसे फिर आनेको कहकर मुझसे अपने हाथकी बारीक-बारीक रेखाओंकी करामात पूछने लगे तभी दरवाजेसे उनकी औरतने पुकारा।

'कौन विमला, अरे आओ, थोड़ा बैठ जाओ। अभी चलता हूँ। मिस्टर विपिन तो बड़े अच्छे आदमी हैं।'

मैंने देखा दरवाजेसे एक सुन्दरी आई और आकर सामनेकी कुर्सीपर बैठ गई। उसकी आँखोंमें स्वाभाविक लज्जा थी। बड़े सलीकेकी औरत लगती थी।

मैंने और भी रस लेकर उन सज्जनका हाथ देखना शुरू किया। औरत कुर्सी खींच और पास बैठकर झुककर देखने लगी।

सहसा उन महाशयने अपना हाथ खींचकर पत्नीके हाथको पकड़ लिया और उसके बार-बार मना करनेपर भी उन्होंने उसका हाथ मेरे सामने फैलाते हुए कहा, 'मिस्टर विपिन, दोनों हाथोंकी रेखाएँ मिलाकर पति-पत्नीके बारेमें बताइए।'

मैं इस हँसोड़ पति-पत्नीकी ओर प्रसन्नतासे देखने लगा।

मैंने ज्योंही उस औरतके हाथपर दृष्टि डाली, मुझे तो जैसे करेण्ट-सा लगा। उसकी हथेलीके बीचमें वही 'काला दाग' था। मेरी अवस्था विचित्र हो गई। औरत भी पसीने-पसीने हो गई और सहसा हाथ खींचकर कमरेसे बाहर चली गई। उसके पति भी घबड़ाकर उसके पीछे हो लिये।

मैं बार-बार सोचता हूँ, पर कुछ साफ नहीं होता। तो उस तरुणीवाली बात शायद बिलकुल झूठी थी। वह तो केवल दिखानेके लिए थी, यानी पोस्टर, विज्ञापनकी तस्वीर। तो यह है कामधेनु पत्नी और उसके हाथका काला दाग जो इस तरहका जीवन बितानेवाली हजारों औरतोंके हाथको गन्दा कर रहा है और यह है वह अकर्मण्य पति जो काम-धामसे कोई वास्ता नहीं रखता।

रेखा, तुम औरत हो, शायद इस पहेलीको ज्यादा साफ कर सको, लिखना तुम क्या सोचती हो। मेरा दिमाग तो अब भी चक्कर काट रहा है।

सस्नेह

विपिन

माटीकी औलाद

फागुनका दूसरा पखवारा चढ़ चुका था। अभी दो दिन पहलेतक आसमान बिल्कुल नीला और साफ था। जर्द धूपका रंग सुनहला होने लगा था और पलाशके लाल फूल अंगारेकी तरह दहकने लगे थे कि अचानक आज चारों ओरसे बादलोंका समुन्दर उमड़ पड़ा, लगता है आसमान फट पड़ेगा। पीपलकी लाल कोंपलें खामोश होकर आनेवाले तूफानका जोर आँकने लगी थीं। बरगदके पीले पत्ते हल्केसे झटकेसे 'पत्त-पत्त' गिर पड़ते थे। उमस बढ़ती ही जा रही थी और देखते-ही-देखते पिघले हुए शीशेकी हजारों धारोंमें पानी टूट पड़ा।

अपने दरवाजेके सामने टेढ़ी नीमके नीचे टीमल खड़ा था। टीमल जातका कुम्हार है और मिट्टीके बर्तन बनाना उसका पुश्तैनी पेशा। उसके हाथोंमें कारीगरी है, जिसमें एक सहज सौन्दर्य होता है और जो उसके हाथमें पलनेवाली मिट्टीकी ही तरह पवित्र और नर्म होती है और जो कभी न दूरकी जा सकनेवाली पगड़ीकी तरह टीमलके माथेपर बँधी रहती है। टीमल बड़ा घबराया हुआ-सा, नंगी डालोंवाली नीमके नीचे टहल रहा था। उसके शरीरमें अँगरखी पानीसे भींजकर चिपक गयी थी और उसकी दमाकी दवाईमें रखी हुई दाढ़ी गिलहरीकी पूँछकी तरह हवाके बहावमें बिखर रही थी। उसके चेहरेकी झुर्रियोंमें एक अजीब किस्मका खिंचाव आ गया था जिसके कारण उसका पूरा शरीर बरसातमें भींजी चारपाईकी तरह अकड़ रहा था। उसने अपनी मुट्ठीको जोरसे दबाकर आसमानकी ओर देखा, तभी पीले-पीले साँपोंकी तरह ऐंठकर बिजली चमकी और अपनी सुनहली डोरसे सामनेके बगीचेको बाँधने लगी।

'हे परमेश्वर' टीमलके मुँहसे प्रार्थनाके उद्गार फूट पड़े, 'इज्ज़त तुम्हारे ही हाथ है।' उसने दोनों हाथोंको जोड़ लिया। क्रोधसे तना शरीर लटक गया और उसकी आँखोंमें बरसाती पानीकी एक संतर चमक उठी।

नीमके सामने एक गड्ढेमें टीमल कुम्हारका आवाँ था जिसपर मूसलाधार पानी गिर रहा था। वह अधपके बर्तनोंकी दुर्दशा सोच-सोचकर बेचैन था। किसे आशंका थी कि इस सूखे दिनमें ऐसा पानी टूट पड़ेगा। इस बेहया दैवके मारे तो नाकों दम है। धानकी खड़ी फसलें सावनकी लूमें झुलसने लगती हैं, खेतोंमें काली राख उड़ने लगती है तो भादों-क्वारमें पानीके मारे बाढ़ आ जाती है। जैसे इस स्वर्गमें भी बदलते हुए जमानेकी हवा चलने लगी है।

वह लपककर बरामदेकी ओर दौड़ा।

'तिन्नी' उसने घरमें घुसते ही अपनी लड़कीको पुकारा जो पानी गिरने की आवाजके कारण शायद सुन न सकी।

'बहरी हो गयी है क्या?' वह सामनेवाले घरके अँधेरे कोनेमें कुछ ढूँढ रहा था। तभी सामने रखी अरहरकी खाँची उठाकर बोला, 'क्यों रे तिन्नी, देवकुरवाले घरमें मैंने राख रखवायी थी न?'

'ओ, होगी वहीं!' तिन्नी घबराये हुए बापके पीछे-पीछे चल पड़ी। सामने दरवाजेपर चारपाई थी; उसने झटकेसे उठाया और दीवालकी ओर जोरसे ढकेल दिया। अँधेरेमें पैरकी ठेस लग जानेके कच्ची हाँडियोंकी एक कतार ही लुढ़क गयी।

'उँह् आज ही जैसे सब कुछ हो जायेगा' वह बुदबुदाया और खाँचीमें राख भरकर बाहर निकल आया।

आँवेकी राख पानी पड़नेसे पिघलकर एक लेप-सी बन जाती है, जिसमें न तो दरारें पड़ती हैं, न तो फाँकें होती हैं, इसलिए पानी ऊपर से सरककर गिर जाता है। पर आज बारिश तेज थी और बाप-बेटी बड़े

परिश्रमसे आँवेको राखसे ढँक रहे थे; पर सब कुछ बेकार होता जा रहा था।

सामनेकी छोटी चरनीपर कुछ बकरियाँ बँधी थीं जो भीगकर सिकुड़ रही थीं और दो-एक आपसमें लड़कर बुरी तरह चिल्लाने लगी थीं।

'हुँ, राख तो जैसे सिरमिटका पलस्तर है' टीमलके लड़के सरजूने व्यंग्य से कहा और बकरियोंकी रस्सियाँ छोड़कर उन्हें घरमें हाँक ले गया। बकरियोंको भीतर बाँधकर वह फिर आया और उसी नीमके नीचे खड़ा हो गया।

'तिन्नी, वे तो पागल हो गये हैं, भींज रहे हैं, भींजने दे, तूने तो भाँग नहीं पी है न! अभी दो रोज पहले बुखारमें बक-झक कर रही थी और आज छोपनी करने चली है।'

'आज तो तबीयत बिल्कुल ठीक है भैया, तुम भी उस खाँचीमें जरा राख लेते आओ न। देखो, यह सब भींज जायेगा तो कितना नुकसान होगा।'

'पागल हो गई है क्या?' सरजू बोला और वैसे ही खड़ा रह गया।

'हाँ, हाँ पागल हो गई है, तू भाग' टीमल गुस्सा होकर बोला, 'जाकर चूल्हेमें सो। हरामीका पिल्ला, चला है सीख देने। एक दिन रोटी न मिले तो मुँहमें कीड़े पड़ जाते हैं। नवाबके चेहरेपर पपड़ियाँ पड़ जाती हैं, इस कोने, उस कोने बैठते हैं जैसे बाप मर गया, अब चले हैं उपदेश देने।' टीमलकी साँस फूलने लगी। उसने जलती आँखोंसे लड़केकी ओर देखा जैसे कच्चा ही खा जायेगा।

'मुझे भी क्या तुम्हारी तरह कुत्तेने काट खाया है' सरजूने मुँह बनाकर कहा।

'कुत्तेने नहीं काटा है तो यहाँ क्यों खड़ा है, जाकर पलंगपर सो।'

'जाऊँगा न तुमसे मतलब? मैं तो पहले ही जानता था कि पानी

बरसेगा। उस दिन अभी तुम्हारे सामने तो पण्डित दाने कहा था कि होलीके आसपास पानीका नछत्तर है, लेकिन तुमको तो कुछ सूझता नहीं।'

'तेरे पण्डित दाकी ऐसी-तैसी, बड़ा जोतिसीका पेड़ बना है। उसके पत्रेमें तो चढ़ते आषाढ़ बरखा लिखी थी न। इस साल तो अद्रा ही बरसनेवाली थी। सूखेमें सारा कुछ जल गया तो गंगाजीके पानीसे महादेव बाबाका अरघा भरवाने लगा जैसे दस लोटा पानी डाल देनेसे खेत सिंच जायेंगे। एक ओर तो खेतोंमें बीया सूख रही थी, दूसरी ओर वह कालीजीके मन्दिरमें हरिकीर्तन करा रहा था। अरे, उसीकी औरतने जब घर फूँक दिया था तो गाँवभर रोता दौड़ रहा था, पहलेसे ही नछत्तर देख लिये होते। अपनी बार किसीको नहीं सूझती।'

'अब तुम्हारे जैसा विद्वान तो कोई है न होगा।' सरजूने मुँहको टेढ़ा किया और शरारतसे अपने बापकी ओर देखकर हँसने लगा। टीमलका क्रोध भड़क चुका था। वह आपेसे बाहर हो गया। आव देखी न ताव चटाकसे एक थप्पड़ जड़ दिया।

'सूअर कहींका, आया है जलेपर नमक डालने। नहीं कर सकता तो जाके सो। कोई तेरा गला दाब रहा है।'

तिन्नी घबराकर बाप-बेटेके बीचमें खड़ी हो गई। बड़ी मुश्किलसे उसने हाथ-पैर जोड़कर उन्हें अलग किया। पानी तेज हो गया था और चिताकी आगकी तरह पूरा आँवा 'भस्-भस्' करके बुझ रहा था। बूढ़े कुम्हारने एक बार आसमानकी ओर देखा और एक बार आँवेकी ओर; और लाचार बरामदेकी ओर मुड़ गया। ऊपर काले बादलोंमें एक गम्भीर गर्जन गूँज उठी। रातकी कालिमा जैसे भींजकर और भी सघन होती जा रही थी।

'तिन्नी' टीमल मूँजकी एक झिलँगी चारपाईपर अपने शरीरको पटककर बोला, 'जरा चीलम तो भर ला।'

उसकी आँखोंमें अब भी हृदयकी भट्ठीमें जलती हुई आगकी तौंक थी। आँवेके अधपके बर्तनोंके नुकसानका उतना मलाल न था, यह कोई पहली ही बार थोड़े हुआ है। माटीकी औलादकी बिसात ही क्या, आँच लगी जल गये, पानी पड़ा गल गये, हवा लगी तो दरारें पड़ गयीं, इसके लिए इतना दर्द क्या! माटीकी एक औलाद तो हम भी हैं; पर हम भी वैसे ही हों, तो रह क्या जायगा? लड़केके व्यवहारसे आज टीमलके चित्तको झटका लगा था।

तिन्नी हुक्का थमा गयी तो टीमल वैसे ही बैठे-बैठे कुछ सोचता रहा। उसकी आँखोंके सामने बुझते हुए आँवेकी राख थी जिसपर दैव जैसे उसके दूसरे जन्मकी रेखा खींच रहा था।* हुक्केकी गुड़गुड़, तम्बाकूके धुवें और बुझती आगकी ललाईमें उसका कुछ खो गया था। वह बार-बार सोच रहा था कि आखिर सरजूको क्या हो गया है। वह हर बातमें आड़े क्यों खड़ा होता है। मरते समय टीमलकी पत्नीने बच्चे और बच्ची-को उसके हाथमें सौंपते हुए अपनी ठण्ढी माटीकी कसम ली थी कि वह लड़केकी पूरी देखरेख करेगा। उस दिनसे आजतक टीमलने उसके लिए क्या नहीं किया। माटी-पानीके रोजगारमें मिलता ही क्या है; पर इस हालतमें भी अपने आधे-पेट रहकर बच्चेके लिए उसने कुछ उठा नहीं रखा। वह उसकी नींद सोता और जागता रहा है। बिमारी-तिमारी हो जानेपर अँगूठेके बल खड़े-खड़े रातें बिता दी हैं। उसे शायद ही कोई ऐसी घटना याद है जिसके कारण सरजूके मनमें ठेस लगी हो और जिसकी वजहसे हर बातमें वह उसका विरोध करे। निचले दर्जेकी पढ़ाई पूरी करनेके बाद जब सरजूने ब्राह्मण लड़कोंकी देखा-देखी मिडिलमें पढ़नेकी

---

*भोजपुर प्रदेशमें मृत्युके दिन आँवेकी राखको ढँककर रख देते हैं। विश्वास है कि राखपर उस जीवके पैरोंके निशान होते हैं जिसकी योनिमें मृतात्माका पुनर्जन्म होता है।

बात की तब भी तो उसने एक बार भी 'नाहीं' नहीं की। बुढ़ापेमें उसको किसीकी मददकी जरूरत थी; पर इसके लिए उसे लड़केका मन तोड़ना गवारा न हुआ। लड़केके लिए फीसका इन्तजाम' किताबोंके पैसे, खाना-दानाका प्रबन्ध वह कितनी मुस्तैदीसे करता था, किन्तु मिडिलमें अपनी बुद्धिकी कमजोरीके कारण जब वह फेल हो गया तो जैसे टीमलका मन ही टूट गया। उस समय भी तो उसने कुछ नहीं कहा था। हाँ, जब सरजू उसके सामने शामकी तरह मनहूस चेहरा लिये खड़ा हुआ तो उसने अपनी तमाम कोशिशोंकी असफलताका हिसाब समझनेके लिए इतना जरूर पूछा था, 'क्या हुआ ?'

'होता क्या ?' सरजूने कहा, 'तुम समझते हो कि घरसे रोज आठ-नौ मील आ-जा कर कोई पढ़ सकता है ? बार-बार कहा कि स्कूल पर ही रहनेका इन्तजाम कर दो तो मारे गुस्सेके आग-बबूला हो गये थे।'

टीमल जवाब सुनकर सुन्न हो गया। लड़केपर क्रोध आया और दुःख भी हुआ। उसने इतना जरूर कहा था कि ब्राह्मण लड़कोंकी देखा-देखी सरजूमें भी अमीरी आ गई है। भला, आठ-नव मील गरीब लड़केके लिए आना-जाना कौन-सी बड़ी बात है। पर सरजू तो अपनी बुद्धीको कभी दोष देता नहीं, केवल उसके इन्तजामको ही बुरा-भला कहता था। उसीका सारा दोष मानता था।

उसके बाद तो जैसे उसने हर बातमें धक्का-मुक्का करनेकी कसम ही ले ली। कभी किसे लड़केसे मार-पीट, कभी किसी बड़े आदमीसे शरारत। उलाहना और धमकीके शब्द सुनते-सुनते टीमलका कलेजा पक गया था। एक दिन उसने उसे एक थप्पड़ मार दिया और उसी रातको सरजू घर छोड़कर कहीं चला गया। वह भी एक बरसाती ही रात थी। जोरोंका पानी बरस रहा था, अँधेरी ऐसी कि हाथोंको हाथ न दिखाई पड़े। रातभर टपर-टपर पानी गिरता रहा, नाकों दम हो गया और इसी रातमें पता नहीं कब सरजू सरककर चला गया।

प्रातःकाल पौ फटते ही एक ओर खिड़कीसे सूरजकी लाल किरणें आयीं और दूसरी ओर बूढ़ेको लगा कि उसके घरकी रोशनी उसे सदाके लिए छोड़कर चली गई है। बुड्ढेका शरीर काँप उठा। उसके चेहरेपर स्याही पुत गई। तिन्नीने जब सरजूके बारेमें पूछा तो उसकी आँखोंमें मृत कुम्हारिनकी छाया देखकर वह सिहर गया। हाथोंसे मुँह ढाँपकर वह रो पड़ा। उसकी आत्मामें जैसे दरारें पड़ गयीं जो हर साँसपर एक दारुक व्यथाको उभार देतीं। उसके मनके कोनेमें उसका आहत पितृत्व बार-बार पूछता, क्या सचमुच सरजू अब न लौटेगा? क्या वह सदाके लिए चला गया? बुड्ढा बार-बार सोचता, हर बार उसे सरजूका ही दोष मालूम होता। हर बार उसीकी मूर्खता, उसीका बचपना दिखाई पड़ता; पर टीमलको अपनेको धिक्कारनेके अलावा कोई दूसरा रास्ता न मिलता। क्योंकि लड़केका छोड़कर चला जाना उसके लिए सबसे बड़ी हार थी।

दो-चार महीने इधर-उधर टक्कर खानेके बाद सरजू लौट आया। उसके मुँहपर कोई लज्जा न थी, चेहरेपर उदासी जरूर थी। वह एकाएक जब बुड्ढेके सामने आकर खड़ा हो गया तो इस बार भी उसने इतना ही पूछा, 'कहो, क्या हुआ?'

'होता क्या?' सरजूने फिर कहा, 'तुमने मुझे किसी लायक भी बनाया है कि नौकरी ही मिल जायेगी। अनपढ़ उजड्डको पूछता ही कौन है? कलकत्तेमें तो बड़े-बड़े पढ़े-लिखे लोग मारे-मारे फिरते हैं। फिर हमें कौन पूछता?'

बुड्ढा कुम्हार उसके निकम्मेपनपर फिर हँस पड़ा। सबको सरजूका ही दोष मानना उसके लिए स्वाभाविक मालूम हुआ। वह उसे प्रायः अवारा, बेवकूफ और घुमक्कड़ कहता और अपने दिलका क्रोध इन्हीं शब्दोंमें निकालकर उसे परितृप्ति मिलती।

'भैया!' तिन्नी बगलकी चारपाईपर औंधे सरजूका हाथ पकड़कर खींच रही थी।

'क्या है ?' उसने झल्लाकर कहा।

'चलो, खालो।'

'जाओ मुझे भूख नहीं लगी है।'

लड़की कुछ देर चुप रही। वह बड़े इत्मीनानसे खड़ी थी जैसे यह रोज ही होता है। इसके लिए थोड़े धैर्य, थोड़े बर्दाश्तकी जरूरत है, फिर ठीक हो जायेगा।

'चलो, चलो थोड़ा ही खा लेना।' उसने फिर आग्रह किया।

'कह दिया कि भूख नहीं है तू क्यों नाहक पीछे पड़ी है, जा भाग।'

'मेरी कसम। थोड़ा ही खाले। भैया, इस तरह बिना खाये कहीं सोया जाता है।' इस बार उसने बड़े अनुनयसे उसकी बाँहको खींचते हुए कहा। यह उसका अन्तिम शस्त्र होता जिससे सरजू अवश्य पराजित हो जाता; पर आज वह भी असफल हो गया। लड़की अपना आहत अभिमान लिये लौट आयी। बुड्ढा चारपाईसे सब कुछ देख रहा था।

'जाने दे, भूख नहीं लगी है तो छोड़, चल मैं चलता हूँ।' वह चारपाईसे उतरा और चुपचाप लड़कीके पीछे-पीछे चलने लगा।

सरजूने करवट ली और बापको जाते हुए देखकर बुरी तरह मुँह सिकोड़कर बाहोंमें भींच लिया। उसके होंठ बुड्ढेके प्रति घृणासे विकृत हो गये। वह भी क्या बाप जो अपनी बेवकूफी और पागलपनसे अन्धा हो जाये। माना कि वह दिनभर काम करता है। सरपर लादकर मिट्टी ले आना, दिनमें चार-चार बार पानी दे-देकर मिट्टीको सोनेसे भी ज्यादा हिफाजतसे रखना कि कहीं तड़के न, कहीं गाँठें न पड़ें और कहीं ज्यादा पानी हो जानेसे सड़ न जाये। फिर घण्टों दोनों पैरोंपर बैठकर तरह-तरहके बर्तन पारना। बुड्ढेके हाथोंमें जैसे जादूका असर है कि केवल हथेलीके थोड़े-बहुत दबावसे बीसों किस्मके बर्तन पुरवे, परई, दिया, मटके, हाँड़ियाँ, सुराही, कलशी एक-से-एक अच्छे निकलते आते हैं। फिर इन बर्तनोंको सुखाना, ईंधन इकट्ठा करना, पकाना, इन्हें रँगना : ये सभी करके

फायदा ? फायदा तो यही कि बुड्ढा जिस पुश्तैनी घरकी एक-एक सींकको अपनी आँखकी लकड़ी समझता है, वह धीरे-धीरे उधड़-उधड़कर उड़ती जा रही है। पूरे मकानमें आँगन छोड़कर कुल चार घर हैं। एक है निकसार जिसमें इस समय बाप-बेटेकी दो चारपाइयाँ पड़ी हैं और जिसमें सवेरा होते ही चाक-डण्डा, भींगे बोरेसे ढँकी मिट्टी और तैयार बर्तनोंकी लाइन लगानेके लिए लम्बा फासला चाहिए। भीतरके तीन घरोंमें एकमें रसोई ही होती है, जिसका बहुत-सा हिस्सा चावल-दालकी हाँड़ियों, टूटे कनस्तर और बर्तन-भाँड़ोंसे भरा रहता है। बगलवाले घरके लिए एक साथ चार-चार उम्मीदवार हैं। बकरियाँ, तिन्नी, दुमकटा कुत्ता और इधर-उधरसे माँगकर लाया हुआ ईंधन। बच जाता है एक घर जिसमें बुड्ढेका देवकुर है, पके बर्तनोंका ढेर लगाया है जो बिकनेका नामतक नहीं लेते, कोनेमें पानीसे आँवेके बचावके लिए राख रखी है, इसमें घर-गृहस्थीके काम आनेवाली पचीसों चीजें जाँत-सिलसे लेकर झाड़ू तक ठूँसे रहते हैं; फिर भी आँगनमें इस समय भी बहुत-सी ऐसी चीजें मिलेंगी जो कहीं घुस न सकनेके कारण सज्जनताकी सजा पा रही होंगी।

इतनेपर भी बुड्ढेसे यह रोजगार छोड़कर पासके बाजारमें नौकरी करनेकी बात करें तो एक थप्पड़ गालपर जड़ देगा और बड़े रोबसे कहेगा, 'हम माटीकी औलाद हैं, माटीकी; कष्ट, दुःख भले सहें, हम कभी मिट नहीं सकते।'

सरजूने करवट बदली और अँधेरेमें अपनी आँखोंको टिकाकर फिर कुछ सोचने लगा।

बरसातके दिन गुजर चुके थे। सारे आसमानको धूप अपनी सुनहली कूँचीसे रँग रही थी। क्वाँरकी चटक धूपसे धानोंमें नयी रंगत आ गयी थी। पूरा सिवान इस वैभवको सम्हालनेमें असमर्थ था। सरजू और टीमल अगहरिया नालेके बगलमें पण्डितके खेतसे मिट्टीके ढेले उठा-उठाकर बोरियोंमें भर रहे थे। यह मिट्टी इलाकेभरमें बर्तन बनानेके लिए

सबसे अच्छी पड़ती है। नाला गंगामें जाकर मिल गया है। बाढ़के दिनोंमें नदीका पानी चमकीली बालूकी एक चादर-सी फैला देता है जो यहाँकी पीली मिट्टीमें मिलकर अभ्रकके टुकड़ोंकी तरह चमकदार हो जाती है। पूरबके कुम्हार तो गधे रखते नहीं, बैल देवता ही है सो सरपर लादकर ही मिट्टी लानी पड़ती है।

अभी बोरियाँ भरी ही थीं कि पण्डितजीका सीरवाह भगड़ू सिंह अपनी मोटी लाठीको काँखमें दबाये, हाथपर खैनी मलते हुए पहुँचा और अपनी नेवलेकी पूछनुमा मूँछको थोड़ा भड़काकर, लाठीके हूरेको जोरसे पटककर बोला, 'कौन है रे, तू सबने ससुरे तो खेतको भागड़ कर दिया भागड़। आखिर इसका भी कोई मालिक-मवार है कि जैसे बउरहेकी भैंस ब्यायी है, सारा गाँव पूरा लेकर दौड़ पड़ा है जिसे भी मिट्टी की जरूरत हुई बस इसी खेतको कोड़ना शुरू करता है।'

'अरे ठाकुर पर्ती है सो थोड़ी उठाये लेते हैं, फसलवाले खेतको थोड़े ही बिगाड़ते हैं!'

'परती है तो क्या? सबमें जो सामजीरा लगा है वह क्या मैं देखता नहीं?' भगड़ू बोला।

'मिट्टी ले जाते हैं तो कोई घर तो नहीं पाटते, बर्तन बनाते हैं सबके लिए' सरजू कह रहा था।

'अच्छा तो जैसे सदावर्त बाँटता है, उठा-उठा बोरे चल। अभी कल ही महराजने ताईदकी थी कि अगहरिया नाले परसे कोई मिट्टी न उठाने पाये। हम भी तो भाई किसीका नमक खाते हैं, मालिककी चीजकी बरबादी कैसे सह सकते हैं!'

और लाख कहनेपर भी दोनों बाप-बेटोंको पण्डितके पास जाना ही पड़ा। सरपर बोरे उठाये उन्हें छावनीकी ओर जाते देख गाँवके कुछेक लड़के भी साथ हो लिये जैसे जल्दी ही कोई तमाशा होगा।

महराज यानी रामसुभग तिवारी इस गाँवके जमीदार हैं। हैं नहीं

थे, क्योंकि कागजमें लिखा है कि जमींदारी टूट गई, पर हैं ही कहना ज्यादा ठीक है क्योंकि उनका चार-सौ बीघे पक्केका सीर अब भी होता है। चरनीपर कुल बीस बैल बँधे हैं। गायें, भैंसें तो अनगिनत, उन्हें बाँधे कौन, रस्सी कहाँ मिलती है, इसलिए अलानिया घूमा करती हैं। हरवाह चरवाह, सीरवाह आदिके परिवारोंसे गाँव भरा है। कुछेक बच जाते हैं जो या तो यजमान हैं या देनदार। बाकी बच रहते हैं औनी-पौनी, नाई-धोबी जो उनकी परजा हैं जिन्हें यह जाननेकी क्या जरूरत कि जमींदारी टूटनेके बाद पण्डितजीको कागजमें भूमिधर कहते हैं या सीरधर। उस दिन जब उनके सामने झगड़ू सिंहने सरजू और टीमलको पेश किया तो उन्होंने गोमुखीमें माला छोड़कर हाथको बाहर किया और ठाकुरको बड़ी डाँट बतायी कि वे पुश्तैनी व्यवहारोंके खिलाफ भला कुम्हारको खेतसे मिट्टी लानेसे रोकते हैं। उलटे पण्डितजीने टीमल कुम्हारको दो रुपये 'साई' में दिये क्योंकि उनके बैलोंके नाद टूट गये थे, क्योंकि बरसातके बाद घरोंकी छाजनके लिए खपरैलकी जरूरत थी और अन्तमें पण्डितजी यदि खुद पैसे-रुपयेसे मदद करके परजा-पौनीको नहीं बसायेंगे तो ये बेचारे जायेंगे कहाँ, इनका रक्षक भी तो कोई और नहीं है। उस दिन मारे खुशीके टीमलकी आँखें भर आयीं। श्रद्धा और प्रेमसे लबालब होकर उसने पण्डितजीके पैर छूये। चलती बार बहुत अभिमानसे उसने लड़केकी ओर देखा जैसे उसकी आँखें पूछ रही थीं, 'क्यों बे, देखा न! तू तो समझता है जैसे संसारसे दयाधरम ही उठ गया।'

पर इसका लड़केपर शायद ही कुछ असर हुआ, इसे कुम्हारने ही नहीं, पलंगड़ीपर बैठे-बैठे पण्डितजीने भी देख लिया और बोले, 'क्यों रे टीमल, यह तो तेरा लड़का है न?'

'हाँ, हाँ महाराज' टीमल गद्‌गद हो गया। पण्डितजीने उसके लड़के तककी बात पूछ दी और वह चट सरजूको जबर्दस्ती पकड़कर ले गया।

'पैर लाग, पैर लाग' टीमलने कहा और जोर देकर उसका माथा नवा दिया।

'चिरंजी, चिरंजी' पण्डितजीने अकड़को झुकते देख मूछोंमें हँसकर कहा, 'अपने बापकी तरह ही कुशल कारीगर बन।'

इसके बाद तो टीमल कुम्हारके घर मानो कारखाना खुल गया हो। बाप-बेटे और लड़की तीनों दिन-दिनभर मिट्टी ढोते, पानी लाते, बर्तनोंके बनाने और पकानेके तमाम सामान तैयार करनेमें उन्हें दो हफ्ते लग गये। एक महीनेके परिश्रमके बाद कहीं खपरैलें, नाद और कई किस्मके बर्तन तैयार हुए जिन्हें वे अपने माथेपर लाद-लादकर पण्डितजीके घर पहुँचाते रहे।

अन्तिम दिन बाप-बेटे पण्डितजीके पास बैठे थे तो उन्होंने गुप-चुप कागजपर कुछ जोड़-जाड़कर चार रुपये फेंके। रुपयोंकी झनझनाहटमें टीमल कुछ सोच ही रहा था कि कृतज्ञता लादते हुए बोले—'देख टीमल, अभी बहुत-सी चीजोंकी जरूरत होगी, कभी फुर्सतसे आ जा तो बातें हों।'

महीने-दिनकी कुल मजदूरी छः रुपये सोचकर उसका मुँह खुल गया।

'महराज' वह डरते-डरते रुपयोंको मलते हुए कुछ कहने लगा।

'क्या है ? हिसाब नहीं समझा शायद।' बड़े महाराजने इत्मीनानसे कहा, 'आठ नादोंके आठ रुपये, दो हजार खपरैलोंके दस, गगरी और कलशोंके तीन, सब इकईस हुए न। इसमें तुम्हारा बकाया लगान पन्द्रह रुपये कट गये, बचे छः। हिसाब समझे न ?'

'लेकिन महराज खेत तो दो साल हुए बेदखल कर लिया।' सरजू बोला।

'सो न करते तो तुम्हें भूमिधर बननेको छोड़ देते।' महाराजने कहा।

'जी वही तो, फिर रुपये !'

महाराज गरम हुए, 'क्यों टीमल, बोलते क्यों नहीं, लड़केके सिरपर हाथ रखकर कहो तो कि रुपये बाकी थे या नहीं ?'

'पर उसीके लिए तो खड़ी फसलके साथ खेत छीन लिया।' सरजू भी कड़ा पड़ रहा था।

'पर खेत तो महाराजका ही था न? और रुपये भी बाकी थे ही!' टीमल घुटनेपर जोर देकर उठा और महाराजको 'पाँलगी' करके चल पड़ा। सरजूने कुछ कहना चाहा; पर डरके रह गया कि कहीं बुड्ढा एक थप्पड़ जड़ न दे।

सरजूने करवट ली। उसे लगा जैसे कोई उसकी चारपाईके पास खड़ा-खड़ा उसकी ओर देख रहा था। उसने आँखें खोल दीं। देखा, कोई न था। पासकी चारपाईपर उसका बाप भी करवटें बदल रहा था। सरजूको नींद नहीं आती थी। ऐसे ही तो उस बार भी नींद गायब हो गई थी। उसे मनाती-मनाती तिन्नो सो गई थी। पानी गिर रहा था और वह सबको छोड़कर कलकत्ता चला गया।

गर्मियोंके बीतते-बीतते पके बर्तनोंकी एक खाँची लेकर टीमल पण्डितजीके घर जा रहा था तो सरजूने टोका और बाजारमें बेचनेकी बात की। पर बाजारके बनिये उधारीपर सौदा लेते और महीनों बाद दाम चुकाते और खुद बाजारमें ही आठ-नव घर कुम्हार हैं इसलिए टीमल लाचार था। बुड्ढेकी बातें ठीक थीं। सो सरजूने खुद खाँची उठाई और पण्डितके घर पहुँचा दिया।

ज्योंही बाप-बेटे आँगनमें पहुँचे, पण्डितकी चारों बहुएँ अपने-अपने घरोंसे फुदकती दौड़ पड़ीं।

एकने सुराही उठा ली तो दूसरीने छीन ली।

'तुम्हारे पास तो है ही।' पहली बोली।

'है तो क्या हुआ, पुरानी हो गई है, पानी ठण्डा नहीं होता।' और दोनोंकी छीना-झपटीमें सुराही टूट गई।

बगलसे बूढ़ी तिवरानी निकलीं और बोलीं, 'क्या है, किसने तोड़ दी?'

'तोड़ी किसने ?' एक बोली।

'ऐसी कच्ची सुराही लाते हैं कि छूटे टूट जाती है।'

'हर चीज अब धोकेकी होने लगी।'

'कच्ची है ?' सरजू बोला, 'आप तो तमाशा करती हैं, उतने ऊपरसे गिरनेपर तो आदमी भी टूट जायेगा।'

तिवरानी बहुओंको जानती थीं सो लड़केकी बात सुनकर वे मुस्करा पड़ीं पर उनकी हँसीसे बहूरानीको आग लग गई।

तिनककर बोलीं, 'हम तमाशा करती हैं, मुएकी बात न सुनो, कहता है हम तमाशा करती हैं।'

शोर-गुल सुनकर पण्डितका लड़का भी आ गया जो सरजूसे ज्यादा अपनी औरतको घूर रहा था। जो अब भी बेशर्मीसे कुम्हारके लड़केकी ओर एकटक देख रही थी। टीमलको मामला बेढंगा लगा। बात बढ़ न जाये इसलिए वह उठा और उसने सरजूके गालपर एक थप्पड़ जड़ दिया।

'हरामीका बच्चा' बुड्ढा चिल्लाया, 'जा भाग, जिस काममें हाथ डालेगा, उसीका सत्यानाश करके रख देगा।'

थप्पड़की यादसे सरजूका मन सचमुच ही भर आया और उसकी आँखोंसे आँसू गिरने लगे। उसे माँ याद आई। और वह हिचकियोंमें फूट पड़ा।

माँकी यादोंको वह सदा भुलानेकी कोशिश करता रहा है। तिन्नीके चेहरेमें वह माँकी सूरत देखकर काँप जाता है। इसीसे तो वह लाख रूठा रहे; जब उसके सामने तिन्नी आ जाती है, उसका सारा क्रोध अनायास बह जाता है। उसे तिन्नीकी याद आई। वह निश्चय ही बिना खाना खाये मच्छरोंवाले उस घरमें सो गई होगी। उसकी सिसकियाँ और भी तेज़ हो गयीं।

बुड्ढा टीमल भी तो जग ही रहा था। वह दबे पाँव आकर चारपाईके पास खड़ा हो गया।

उसने पीड़ामें टूटते लड़केको छूना चाहा, पर उसका अपराधी हृदय साहस न कर सका। वह भी तो अब तक यही सब सोच रहा था। आत्मग्लानिसे बुड्ढेका गला जैसे रुँध गया था। उसकी पुरानी आँखोंसे ढुलककर दो बूँद आँसू सरजूके भीगे गालोंपर चू पड़े।

गंगा-तुलसी

सुनीलको लगा कि उसका सारा कमरा एक अजीब तीखे धुएँसे भर गया है। एक ऐसा धुवाँ जो अपनी जहरीली गुंजलकमें उसके सारे शरीरको दबोच लेना चाहता है। नवम्बरकी रात अपनी सर्द स्याह लिहाफमें बेहोश थी। सुनीलको लगा कि इस दमघोंट वातावरणमें उसकी आत्मा एक बेसहारा तिनकेकी तरह चक्कर खा रही है। उसके गलेमें मछलीके तीखे काँटेकी तरह कोई चीज कलक उठती; साँसें हर बार बेइन्तहा कोशिशके बाद भी जैसे सीने पर रखे बोझको हटानेमें नाकामयाब होकर टूट रही हों—

सुनीलके सामने एक कार्ड पड़ा है जिसमें उसके मुंशी चाचाने लिखा है कि माँ सख्त बीमार है। बचनेकी कोई उम्मीद नहीं। वह आखिरी साँसके टूटनेके पहले सुनीलको देखना चाहती है।

तब सुनील केवल सात वर्षका लड़का था। उसकी माँ गाँवके जमींदार बच्चनजीके घर खाना बनानेका काम करती थी। सुनीलको याद है कि ठीक चार बजे जब कि सारा गाँव नींदकी चादरमें मदहोश मुखकी साँसें लेता रहता, उसकी माँ आँगन-घर साफ करती, बरतन धोती और सूरज निकलनेके पहले गंगामें स्नान करके लौटती। अगरु और गुग्गुलकी परिचित गंधसे कमरा भर जाता। वह बड़े प्यारसे सुनीलके सिर पर हाथ फेरती रहती—और जगाकर मुँह हाथ धुलाती। सुनील नाश्ता करके अपनी किताबें लिये गाँवके स्कूलमें पढ़ने जाने लगता तो उसकी माँ घरके दरवाजे पर खड़ी बहुत देर तक उसे देखती रहती—वह हमेशाकी तरह कुछ दूर जाकर पीछे मुड़कर देखता तो माँको दरवाजे पर खड़ी देखकर मुसकरा

देता। उसकी मा हँसती, बड़ी पवित्र और निर्मल हँसी। फिर सुनील दौड़ता हुआ स्कूल चला जाता।

'यह कमीज भला कित्तेको सिलाई तेरी माँने ?'

सुनील चुप रहा।

'और यह धोती···'

सुनील फिर चुप।

राजा भैया ठहाका मारकर हँसा था। अपने मोटे-मोटे साँवले होठोंको औसतसे ज्यादा फैलाकर, सुराहीके पानीकी तरह डुलक डुलक कर उसने कहा था—'छोड़ो भी यार, यह क्या बोलेगा भला! इसके बदनका कोई कपड़ा इसका थोड़े है! सब लल्लूके कपड़े हैं···इसकी माँ रो-गिड़गिड़ा कर माँग लायी है दादीसे। लेकिन यह नीली वाली कमीज तो चोरीकी है, हाँ, लाओ हाथ मारो! दो महीने पहले ददुवाने सिलाई थी लल्लूके वास्ते···खाना बनाते-बनाते देखा होगा कि घरमें कोई नहीं है, बस तिड़ी कर दी होगी। माँ कहती है जबसे इस सुनीलकी अम्मा खाना बनाने लगी है—भण्डार खाली हो गया है। घी, अँचार, मुरब्बे जाने क्या-क्या चुरा कर लाती है वह बुढ़िया इस मरभुखेके लिए!'—राजा भैयाने सुनीलकी ओर देखा और घृणासे थूक दिया।

'चोरीका घी खाकर गाल कितना फुलाये है!' राजा भैयाके लँगूरे दोस्तने कहा था और सुनीलके गालमें एक खुदक्का मारकर बोला—'क्यों बे, टमाटर चुराये हैं ?'

तब सुनीलको गुस्सा आया था, साँसें हुड़की थीं, होंठ काँपे थे और उसका जी हुआ था कि राजा भैयाका मुँह नोच ले, उसके मुख पर नाखून गड़ा दे और उसके लँगूरे दोस्तकी कमीजको तार-तार कर दे या उसकी नाक पर घूँसा मारे और उसके मुँह पर थूक दे!

किन्तु तब वह केवल सात सालका था। वह जानता था कि उसकी माँ देवी है। वह अपने खिलाफ कुछ भी सुन सकता था, किन्तु माँके

खिलाफ एक शब्द भी वह बर्दाश्त नहीं कर सकता था। उस दिन सुनीलने राजा भैया पर एक मुट्ठी धूल डाल दी थी, उसके दोस्तके मुँह पर थूक दिया था—और बवंडरकी तरह दौड़ता हुआ अपनी माँके पास पहुँचा था।

'आँखें फोड़ दी हैं उसकी'—वह बुदबुदाया।

'किसकी ?'

उसकी माने मुसकराते हुए पूछा था।

'उस राजा भैयाको ! कहता था तुम्हारी मा चोर है, लल्लूके कपड़े चुरा-चुरा कर तुझे पहनाती है। घी तेल-मुरब्बे चुरा-चुराकर ले आती है। बस मैंने एक अँजुरी धूल उठाई और उसकी आँखमें फेंक दी।' सुनील अपनी माँकी धोती पकड़ कर झूल गया था—'ठीक किया न ?' उसने माँकी आँखोंमें मुसकराते हुए पूछा था। माँ चुप रही। घुटनेमें लिपटे हुए सुनीलके बालोंमें हाथ डाले वह जाने क्या सोचती रही। आगे खपरैलकी मुंडेर थी, उसपर एक बिल्ली थी, ऊपर एकदम नीला-नीला खाली आसमान था। सुनीलने माँके इस तरह देखनेका मतलब नहीं समझा तो पूछा था—'माँ, मैंने ठीक किया न ?'

'एँ !' चौंककर बोली माँ—'हाँ, हाँ, तूने ठीक किया, झूठ बकता था वह, राजा भैया ! बिल्कुल झूठ बोलता था।'—पर फिर उसकी माँ चुप हो गई थी। कुछ देरके बाद बोली—'मुन्ने, तुम्हें लड़ाई-झगड़ा नहीं करना चाहिए बेटा ! राजा भैया कुछ भी कहे, तुम लड़ना मत। भला किसीके कुछ कहनेसे कुछ होता है ?' उस समय सुनीलको लगा था कि माने ठीक कहा था—किसीके झूठ कहनेसे किसीका कुछ नहीं होता। किन्तु काश, यह सब झूठ होता ! काश, उसके मनको विश्वास हो जाता कि उसके शरीरमें चोरीके अन्नसे बना खून नहीं है ! पेशानी पर बेतरतीब लटकी हुई लटोंमें चोरीके तेलकी गन्ध नहीं भरी है ! काश, उसे कोई

विश्वास दिला देता कि उसके शरीरके कपड़ोंमें किसी औरके पैसे नहीं लगे हैं !

अब सुनील बीस वर्षका नवयुवक है। वह अब भी चाहता है कि सात वर्षकी उमरमें लगी उस चोटका हाल पूछे। वह चाहता है, कोई बताये कि उसकी माँ राजा भैयासे लड़ाईकी बात सुनकर मुंडेरेकी ओर क्यों देखने लगी थी।

महीने भर पहले बी० ए० की परीक्षा देकर वह गाँव गया था। आज उसके जीवनकी सबसे बड़ी साध पूरी हो चुकी थी—उस छोटेसे गाँवमें कोई भी उतना पढ़ा न था। सुनील सोचता था अपनी विधवा माँके बारेमें। उसकी यादसे ही सारा वातावरण अगरु और गुग्गुलके परिचित धुएँसे भर जाता। गाँवके वातावरणमें एक अजीब कशमकश थी। सुनीलका स्वागत करनेके लिए सभी सामने आये थे। पर सबके चेहरे पर एक बेमानी मुसकुराहट थी। एक ऐसी मुसकुराहट जो कहती थी हमें समझो, हो सके तो हमारा राज़ मालूम करो—क्योंकि अब तुम सात सालके लड़के नहीं हो; अब तुम किसीकी आँखमें धूल झोंककर मुसका नहीं सकते; अब तुम अपने सवाल पर अपनी माके मुंडेरेकी तरफ देखने-को कुछ न समझनेके ढोंगसे छिपा नहीं सकते !

घरमें पैर रखते हुए सुनीलको लगा था कि वह उसी वातावरणमें आ गया है जहाँ अगरु और गुग्गुलका धुवाँ भरा हुआ है, जो अपनी पवित्रताकी लटें फैलाकर उसके चारो तरफ लिपट रहा है। दूधकी तरह साफ साड़ीमें लिपटी हुई माँसे वह आज कुछ पूछना चाहता था किन्तु कुछ भी पूछ न सका। अपने सिर पर उन ममता भरी अंगुलियोंके स्पर्शमें वह सब कुछ भूल गया था। उसकी माँ कितनी खुश थी, जैसे थके हारे बटोहीको उसकी मंजिल मिल गई थी ! उसके चेहरे पर सफलता-की निर्मल हँसी थी, वही हँसी जो सुनीलको स्कूल जाते वक्त घंटों निहारा करती थी।

कुटिल मुसकराहटमें लिपटा हुआ राज़ बहुत देर तक छिपा नहीं रह पाया। जमींदारके लड़के बचन और विधवा ब्राह्मणीके प्रेमके किस्से लोग इस तरह सुनाते जैसे तीसरी लड़ाई छिड़ गई हो। इस दास्तानमें सुनील-का नाम भी जरूर आता। तब लोग बड़े इत्मीनानसे कहते—'क्या करती बेचारी! कोई सहारा न था; लड़केको पढ़ानेके लिए उसे सब कुछ करना पड़ा!'

आज गंगाकी दूधिया लहरें कोयलेसे भी अधिक काली मालूम होतीं। गर्मीका दहकता सूरज जब साँझको बुझे दियेकी तरह लहरोंमें सिर छुपाने लगा तो सुनीलने देखा, जैसे पश्चिमी आकाशके गेरूई बादलोंमें किसीकी गौरांग छाया खड़ी है। खिंची हुई मूँछे, सिंहके अयालकी तरह फड़फड़ाते हुए बाल, लम्बे-चौड़े कंधे पर झूलता हुआ कुठार—

पर्वतो इव दुर्धर्षः कालाग्निरिव दुःसहः।

'तो तुम्हें प्रसन्न करनेके लिए पिता, मैं अम्बाका गला काट सकता हूँ।' भार्गवका पवित्र रक्त नसोंमें बिजलीकी तरह दौड़ जाता।

'तो क्या अम्बा व्यभिचारिणी है?' पृथ्वीने पूछा था, नक्षत्र काँपे थे, किन्तु भार्गवके मनमें किंचित् भी संकोच न था।'

'सुनील!' मुंशी चाचाने पुकारा था, 'यहाँ क्या कर रहे हो तुम?'

'एं!' चौंक उठा था सुनील, 'जी कुछ तो नहीं।' दोनों खामोश थे। कगार पर चढ़ते हुए मुंशी चाचाने कहा था—'ममताको तर्क करना गुनाह है बेटा।' सुनीलने कोई उत्तर नहीं दिया था।

आज मुंशी चाचाका पत्र आया है कि अम्मा बीमार है, बचनेकी कोई उम्मीद नहीं। आज फिर अम्माकी याद आते ही सुनीलके कमरेमें वही चिरपरिचित धुआँ अपनी सम्मोहनी गंधके साथ भर गया है—किन्तु आज यह धुआँ कितना तीखा है, आज उसकी लपटें कितनी कठोर हैं, आज उसका प्रभाव कितना दम-घोंट है! आज उसके स्पर्शसे प्राणोंमें

पुलक नहीं, मुर्दनी छा रही है, आलोंमें शीतलताकी छुवन नहीं दर्दकी लहर उठ रही है। उस दिन सुनीलने नदीसे लौटते वक्त प्रतिज्ञा की थी कि या तो अम्मासे इस प्रवादका समाधान मांगेगा या हमेशाके लिए उसकी पतित काली छायाको छोड़कर किसी कोनेमें जा छिपेगा। मनमें क्रोधके ज्वारको छिपाये, व्यथासे उमड़ता-घुमड़ता जब वह अम्माके पास पहुँचा तो उन्होंने पूछा था—'नदी गये थे बेटा ?'

'हुँ' उसने कहा था। उसे लगा कि उसका सारा क्रोध, व्यथाका समूचा ज्वार किसी अदृश्य चुम्बकके सहारे खिंचकर शान्त हो गया है। और तब लाचार सुनीलको घर छोड़कर किसी अजनबी जगहमें जाकर मुँह छिपा लेना ही उचित मालूम हुआ था।

पर आज जब अम्मा मर रही है तो जाने क्यों सुनील प्रसन्न है। उसे लगता है कि उसके शरीर परसे कालिखकी पर्त अपने आप फटने लगी है। सुनील मरती माँको भी क्षमा नहीं कर सकता, कभी नहीं। आज वह अन्तिम साँस तोड़ते वक्त ही पूछेगा कि 'तूने ऐसा क्यों किया ?'

अँधेरी गलियोंमें मुँह छिपाये सुनीलने जब अपने घरके दहलीजमें पैर रखा तो अज्ञात भयसे उसकी आत्मा काँप उठी। बदला लेनेके पहले ही कहीं वह मर गई तो ? दीपककी धुँधली-सी रोशनीमें उसने देखा, उसकी माँ चारपाईपर निश्चेष्ट पड़ी है। सिरहाने अपनी दोनों बाहोंमें सिर गड़ाये मुंशी चाचा बैठे हैं।

'भाभी !' मुंशी चाचाने माँको झकझोरकर कहा—'सुनील आ गया भाभी, यह देखो सुनील !'

सुनील सिरहाने चुपचाप खड़ा था। उसके होंठ क्रोधसे भिंचे थे, मुट्ठियोंमें खिंचाव थी, नसोंमें खून खौल रहा था।

'सुनील !'—अम्मा धीरेसे बोली। मुंशी चाचाने दीयेकी लौ उकसा दी थी। वही पुरानी मुसकराहट ! सुनीलको लगा कि अगरु और गुग्गुलके धुएँसे कमरा भर गया है। उसने गुस्सेसे चारों ओर देखा।

'तू नाराज है न सुनील ?' अम्मा मुसकराकर बोलीं—'लेकिन तू मुझसे नाराज हो सकता है बेटा, अपनेसे नहीं। गंगाके पेटमें दुनिया भरकी गन्दगी समाई रहती है, पर पानी कभी अपवित्र नहीं होता। तेरेमें कोई पाप नहीं....' साँसें रुक गई थीं, लहरें खामोश हो चुकी थीं।

'खड़े क्या हो बेटा ! मुँहमें गंगा-तुलसी डाल दो'—मुंशी चाचाने कहा। सुनील घबड़ाकर आलेकी ओर बढ़ा। उसके पैरोंसे दर्दका समुन्दर लिपट गया था। ताँबेकी आचमनीमें गंगा-तुलसी लेकर लौटा तो लड़खड़ाकर गिर पड़ा। वह पवित्र मोक्षदायी जल अम्माके ठण्डे पैरोंपर बिखर गया। सुनील फूट-फूटकर रो पड़ा, किन्तु आज उसके बालोंमें किन्हीं उँगलियोंका शीतल स्पर्श न था !

बिना दीवारका घर

मैं तो उसका नाम भी नहीं जानता; किन्तु ऐसे दिनोंमें जब मेरी जेबमें पीतलकी आखिरी इकन्नी बच रहती है, न जाने क्यों अचानक उसकी यादसे मन भर जाता है। कुर्तेकी जेबमें दुबकी-दुबकी इकन्नी किसी जान-दार चीजकी तरह कुदककर सामने खड़ी हो जाती है, और नाना प्रकारकी शरारत-भरी मुद्राएँ बनाकर मेरी आँखोंमें घूरने लगती है, जैसे पूछ रही हो : उसमें तुममें कोई अन्तर है, एक ही सिक्केके दो पहलू नहीं, तो और क्या ? मैं घृणासे, शर्मसे गरदन झुका लेता हूँ। माना कि आत्म-वंचनाका यह रूप मेरा स्वयं निर्माण किया हुआ है, अपने लिए यह घृणा स्वयं मेरी जगायी है, उसे कोई दूसरा देख भी नहीं पाता; किन्तु अपने मनमें ही उबलती-उफनती घृणाका जोर कुछ कम होता है क्या ?

'बाबू साहब, सुनना जी जरा।' गौदोलियासे चौक जाते हुए कई दफे इस औरतको देखकर खीज होती, झुँझलाहटसे मन तिक्त हो उठता। पहली बार देखा तो गोदमें एक बच्चा लिये मोड़पर खड़ी थी। पाससे गुजरा तो बोली, 'बाबू साहब।'

सिगरेट जलकर उँगलियों तक पहुँच गई थी। निस्तेज राखसे नफरत होती है न, सोचा झटकार दूँ। वह तो माननेवाली थी नहीं, अपनी असफलतापर उसे दुख न था। तिरस्कारसे ग्लानि क्यों होती। उसके लिए तो यह सब-कुछ सहज था, जन्मजात। साथ-साथ चलती रही। कतराकर निकल जानेमें टकरानेकी संभावना थी, रुककर कुछ कहने-सुननेमें पीली बर्रकी तरह लुपलुपाती हजारों आँखें जिस्मसे चिपक जातीं। बोला, 'क्या है, इस तरह क्यों शरीफ लोगोंको परेशान करती हो ?'

'यह बच्चा मर रहा है।'

'अस्पताल ले जाओ, मैं क्या करूँ।'

वह भला बच्चेको अस्पताल क्यों ले जाने लगी, कुतियाकी तरह दुम दबाये पीछे लगी रही। हँसीकी सूझी—'किसका है ये ?'

जाने कैसी बेहया है। मटककर बोली, 'अरे, मुन्नाको भूल गये सरकार। कोई शरीफ भला अपने ही जिस्मके टुकड़ेको...'

'चुप रह।'

खिलखिलाके हँस पड़ी। हँसती तो बेमिसाल रंगत उसके साँवले चेहरेपर बिखर जाती।

'नौकरी क्यों नहीं कर लेती ? बर्तन-वर्तन मल दिया कर। खाने-पीनेकी कमी न होगी, इस तरह हाथ फैलानेसे तो लाख बेहतर है...'

'कल ही आ जाऊँ।' क्या अन्दाज सीखा है। बेशर्म, छातीसे गिरे पल्लूको असावधानीसे सँभालते हुए बोली,—'बूढ़ा बाप है; दरवाजेपर बैठा पहरा देगा। सुरती ठोंका करेगा। मक्खियाँ पास नहीं आएँगी; विधवा बहन है थोड़ी बदसूरत हुई तो क्या हुआ, झाड़ू-बुहारू कर देगी, गाहे-बेगाहे पैर भी दाब देगी।' वह आँखें तिरछीकर मुसकरायी, 'यह टिड्डा तो उसीका है, मैं तो अकेली जान हूँ, अभी शादी भी नहीं हुई...'

'अच्छा, अच्छा हुआ, बकवास बन्द करो। यह लो इकन्नी, और पिण्ड छोड़ो...'

वह इकन्नी लेकर देखती रही। होंठोंकी बंकिम रेखाएँ जैसे कहती हों— 'बस बाबू, थोड़ा और नहीं सुनोगे ? गरीबोंके उद्धारका पुण्य इतनी जल्दीमें कैसे सँभलेगा सरकार। इतनी बड़ी लालसा संजोये हो, तो थोड़ा धीरज तो रखा करो।'

मैं आगे बढ़ गया। क्योंकि उस समय गरीबोंके उद्धारके पुण्यको सँभालनेका धीरज न था। पासमें इकन्नियोंकी कमी न थी, जिनसे मैं इस तरह हाथ फैलानेवाली कई जवान औरतोंसे छेड़खानीकर सकता था।

उनकी गोदमें भूखसे अधमरे पड़े बच्चोंको अस्पताल ले जानेकी सलाह दे सकता था, और मुफ्तमें इस तरहके अवैध छोकरोंका बाप बननेका रोब ले सकता था।

किन्तु आज मेरी जेबमें यह आखिरी इकन्नी बची है। एकदम आखिरी। सारी उम्मीदोंका अम्बार आतिशकी तरह जलकर राख हो चुका है, मेरे जाने-पहचाने जिस्ममें अवतार लेनेवाली वे शक्तियाँ सो गई हैं, जिन्हें देखकर परिवारवाले पड़ोसियोंको मेरी शोहरतका पुराण सुनाया करते थे। जब उम्मीदें थीं, तो मैं भी एक जिन्दादिल पुत्र, भाई, या दोस्त था। बाप-दादोंकी कमाई दौलतका एक छोटा हिस्सा मेरी शराफतके लिए बतौर पेशगी मिल जाया करता था, क्योंकि कर्जदारको तब मूल-धनके डूबनेकी आशंका न थी।

शाम हो आई थी। जयपुरके खूबसूरत शहरकी हमवार जिस्म काली सड़कें रिक्शे, ताँगोंकी झनझनाहटसे गुँजान हो रही थीं; कंदीलोंकी रोशनी सन्ध्याके सिन्दूरी प्रकाशमें ऊँबती नजर आतीं। नीले आकाशमें थोड़ी देर पहले मँडरानेवाले चीलोंके अडोल पंख हवामें तैरते मालूम होते। गुलाबी शहरके मकानोंके गुंबदों, मन्दिरोंके शिखरों या फाटकोंकी बुर्जोंके नुकीले उभार आकाशकी छातीको चीरते प्रतीत होते। चटक घाघरे और रंग-बिरंगी पगड़ीसे लैश नर-नारीके जोड़े, कन्दीलोंकी रोशनीमें एक दूसरेके चेहरेको देखकर मचलते, मुसकराते और हँसते हुए आगे बढ़ जाते।

चौड़ा रास्ताके दक्खिनी मोड़पर खड़ा हूँ। कल भी यहीं खड़ा था। याद करके ही सारा बदन गुस्सेसे लाल हो उठता है। ऐसी बदतमीजी शायद ही कहीं देखनेको मिलती हो। काफी भीड़ थी, कोई मदारी तमाशा दिखा रहा था। बिना दिक्कतके ऐसे तमाशोंको कौन छोड़े। तालियोंकी गड़गड़ाहटने जादूगरकी शक्तिकी अभ्यर्थना की, तो मैंने देखा इस सामूहिक आवाजमें मेरी दो हथेलियाँ भी अपना योग देनेके लिए तैयार हैं।

मदारीके अजीबोगरीब सामानोंके बीच मैली चादरपर एक सात-आठ सालका गन्दा-सा लड़का लेटा था। मदारीने गूदड़से एक तेज धारका चाकू निकाला—जनताके सामने घुमाकर उसने धारपर हाथ फेरा, जैसे विश्वास दिला रहा हो कि अपने बच्चेका सिर काटनेके लिए भी उसने चाकूपर काफी सान धरायी है। भला कोई बाप रोजीके लिए अपने बेटेका सिर भोंथे चाकूसे कैसे काट सकता है। लड़का बड़े मजेसे सोया था निश्चिन्त, वह जानता था कि उसका बाप सिर काटनेका जादू करने जा रहा है, इससे पैसे मिलेंगे। दोनों बाप-बेटे इस रोजगारमें बिलकुल सिद्ध-हस्त थे।

लड़केके सिरको अपने हाथमें तरबूजकी तरह सँभालकर मदारी बोला, 'हुकुम हो अन्नदाता, तो थोड़ा खून भी दिखा दूँ।'

सारी भीड़ सिहर उठी, आँखें झपक गयीं, ओंठ चिल्लाये, 'ना ना, ऐ नहीं, नहीं, रोको, रहने दो ये सब।' मदारीने मुसकराकर जनताकी ओर देखा, और बड़ी घृणासे छुरेपर थूक दिया, नोकसे मिट्टी उछाली, और हाथोंसे मसलकर अपने सिरपर उड़ा दी। किसीने खयाल भी नहीं किया कि नकली सिर काटनेवाले मदारीके लिए भी पुत्रपर वार करनेवाले हथियारपर कितनी घृणा थी, किन्तु चाहकर भी तो वह इस पेशेको नहीं छोड़ सकता—रोजीके लिए इस अन्दाजसे सिर कटानेको पुत्र भले तैयार हो, किन्तु बाप आह''' कितने हैं ऐसे'''जो यह स्नेह-रिश्ता कायम रख पाते हैं।

'खिलाड़ी'

'मदारी'

'बताएगा'

'हाँ बताएगा'

लड़केकी आँखपर पट्टी बँधी थी, बाप भीड़के पास खड़ा था।

'ये बोल ?'

'दाढ़ी'

'काली या उजली'

'उजली'

बूढ़े मियाँ खीसें निपोरकर हँस पड़े।

'खिलाड़ी'

'मदारी'

'ये बोल'

'छाता, पग्गड़, टोपी' मदारीने जो भी पूछा खिलाड़ीने सब बताया। अबकी वह मेरे पास आकर खड़ा हो गया, मैंने मुसकरानेकी कोशिश की।

'खिलाड़ी'

'मदारी'

'ये बोल, बाबूकी जेबमें'

'इकन्नी।'

गुस्सेके मारे चेहरा लाल हो गया। मुसकरानेकी व्यर्थ कोशिश की। बगलकी पाकिटको कुछ इस ढंगसे दबाया कि लोग समझें कि असली पैसे तो इसीमें हैं। उसमें तो बाबूने कुछ ऐसे ही मामूली खेल-तमाशोंमें बख़्शीश देनेके लिए इकन्नी डाल ली है। मनमें तो आया कि इकन्नी निकालकर इस मदारीके बच्चेपर दे मारूँ! पर यह तो वही आखिरी इकन्नी थी, उसे छुआ और वैसे ही रहने दिया। पीछेके लड़केको धक्का दिया, खेल खत्म होनेके पहले कुछ इस अन्दाजसे बाहर आया कि ऐसा लुच्चा तमाशा केवल अनपढ़ या गँवार लोग देखते हैं।

'बदतमीज' सड़क पर आनेपर गुस्सा फिर उमड़ पड़ा।

'किन्तु···एक बात है, माफ कीजिएगा, इकन्नीको लेकर ऐसी छेड़खानी आप भी तो करते थे न···' किसीने मनमें पूछा।

'किन्तु यह भी क्या बदतमीज़ी! यह भी भला कोई पूछनेकी बात है?'

'फिर इसमें चिढ़नेकी बात क्या है, इकन्नी तो आपकी ही है न, किसीसे भीख तो नहीं माँगी ?'

'किन्तु मेरे पास यह इकन्नी ही है, इसे बतानेकी क्या ज़रूरत है।'

'ही ही ही ही···'

शरीर पसीनेसे लथपथ हो चुका था। हवामहलके सामने खड़ा हूँ; पर हवाका कहीं नामोनिशान नहीं। लगता है, यह सहस्रमुखी राक्षस सारे शहरकी हवा पीकर ऊँघ रहा है।

भूखसे बुरा हाल था। पाकिट टटोला, इकन्नी वैसे ही पड़ी थी। मूँगफली बिक रही थी; पर यह मूर्ख खोमचेवाले कितने अहमक हैं, भला ये भी सरे-आम चिल्ला-चिल्लाकर बेचनेकी चीज़ हैं। मैंने इकन्नीको छुआ; किन्तु वह इतनी चिपचिपी क्यों हो गई है, खून···नहीं, इसमें मैं क्या कर सकता था। माना कि मैंने एक बार भी उस मदारीसे नहीं कहा था कि वह अपने लड़केका गला न काटे; किन्तु यह सब तो इसलिए कि मैं जानता था कि यह सब फरेब है, खाली फरेब। और कहीं अगर गला काटते वक्त उसका जादू व्यर्थ हो जाता तो, कहीं मन्त्रके अक्षर पागलके प्रलापकी तरह निरर्थक हो जाते तो···तो एक अबोध बालक अपने पिताके स्नेह-भरे हाथों कत्ल हो जाता। मैंने इकन्नी निकाली। वह पसीनेसे बिलकुल गीली हो गई थी, मनमें आया कि लौट चलूँ और यह इकन्नी उस मदारीको दे दूँ, कहूँ, भाई बुरा न मानना, मेरे पास भी यह आखिरी थी, इसीलिए···हाँ; किन्तु इतना साहस मुझमें कहाँ था।

सवेरे होटलसे चला तो केवल एक कप चाय पी थी। बॉय चाय लेकर आया तो बोला : 'साब, टोस्ट नहीं है।' वह बिना मेरी बात सुने लौट गया था। मैं पूछ भी न सका कि टोस्ट क्यों नहीं है। हालाँ कि यह मैं पूछता नहीं। मैं जानता था कि टोस्ट क्यों नहीं है। डेढ़ महीने पहले जब इस होटलमें आया तो यही बॉय चाय लेकर आया था, उस समय भी

खाली चाय ही लाया था, बिना पूछे बोला : 'साब, माफ करना टोस्ट नहीं है, अभी आपका खाना दे जाते हैं।'

खाना लाते हुए अक्सर सुना कर कहता : 'मैनेजरसे कंजूस तो यह महाराज हो गया है। नर्कमें जाएगा हरामी। साब, यह महाराजका बच्चा घी बचाकर बिलेक करता है। आपकी चपातियोंपर तो मैंने खुद चुपड़ दिया। इत्ता घी देखे तो उसकी आँखें फट जाएँ।' अपनी जवाँमर्दीके किस्से सुनाकर पूछता : 'अभी तो दो-चार दिन रहेंगे न साब, हाँ वैसे होटल बहुत अच्छा नहीं है, पर कोई दिक्कत न होगी। आपको जरूरत पड़े तो मुझे बुला लेना।'

'कहाँ के रहनेवाले हो ?'

'आगरेका हूँ साब, इस होटलमें छह सालसे हूँ। एकसे एक लोगोंकी खिदमत की है, क्या मजाल कि कभी किसीको कुछ शिकायत रही हो। एकसे एक बाबू आये साब, अभी पिछले महीने दिल्लीका एक बाबू आया—ऐ है, क्या तबीयत पाई थी, जाने लगा तो पाँच रुपयेकी नोट निकालके फेंक दी। बोला, 'बाय तेरी शर्टके लिए'। लड़केने अपना शर्ट दिखाते हुए कहा : 'उसीकी है साब'। मैं मुसकराते हुए उस शर्टको देखने लगा, जो साल भर पुरानी तो थी ही। बॉय मुझे इस तरह मुस-कराते देख अपनी उँगली मलने लगा जैसे उसे एकदम भुर्ता कर देगा, कभी जमीनको देखता कभी मुझको।

प्लेटें उठाकर जाने लगा तो बोला : 'एक आना साब, सुबहसे बीड़ी नहीं ली।' तब बॉय मुझे कुछ और समझता था। तब मैं एक महीने तक यों ही रह जानेवाला बाबू न था। तब मुझे देखकर मैनेजर कुर्सी छोड़कर उठ जाना जरूरी मानता था, सुबह स्नानके लिए गरम पानीके लिए पूछना आवश्यक था, तब बॉयकी दृष्टिमें मैं इतना सहनशील बाबू न था कि किसी भी चीजके खत्म होनेपर गुस्सा न करूँ। एक महीनेके अन्दर

दो बार कमरा बदला जा चुका था, मैनेजरने दरी बिछे फर्शवाले कमरेके भारी होनेकी बात बड़े ढंगसे दिलमें उतार दी थी, मेरे लिए एकदम शान्त और एकान्त कमरेकी व्यवस्था कर दी गई।

रोजकी तरह भाड़ेपर दिये जानेवाले उपन्यासोंकी दूकानपर दो मिनट रुकनेके बाद ज्यों ही आगे बढ़ा कि एक भिखारीसे टकरा गया।

'जिस दिन राम-णाम लेणो रे भाऽऽई' रामनामी चादरमें लिपटा भिखारी मेरे सामने खड़ा हो गया। मैं कतरा कर बाईं ओर मुड़ा तो वह भी मुड़ा।

'राम णाम लेणो रे भाऽऽई'

मुझे बड़ा गुस्सा आया। ऐसे ढीठ होते हैं ये भिखारी भी। वेश कैसा साधुओंका बनाये है। मैं उसकी ओर गुस्सेसे देखते हुए दाईं ओर मुड़ा तो वह भी मुड़ा—

'राम णाम लेणो रे भाऽई'

'ओफ्फोह' मैंने धीरेसे पाकिटसे इकन्नी निकाली और उसके हाथ पर दे मारी, 'लो बाबा, पिण्ड छोड़ो····'

इकन्नीकी ओर बिना देखे वह मेरी ओर घूरने लगा जैसे आर-पार चीरकर रख देगा। मैं एकदम चिल्ला उठा—'इस तरह क्या घूरते हो ?' पैसे पानेके बाद भी उसका इस तरह देखना मुझे बहुत बुरा मालूम हुआ।

जाने वह क्या बड़बड़ाता रहा। आदमियोंकी खासी भीड़ इकट्ठी कर ली।

'तैंने इकन्नी दी।' एक हट्टे-कट्टे पग्गड़वालेने पूछा।

'हाँ, दी तो, कोई गलती की, यही तो कुत्तेकी तरह पीछे पड़ा था···'

वह ऊँटकी तरह बलबलाया : 'चुप बे छोकरे, तेरे कूँ मालूम है कि ये कूण हैं।'

'होगा कोई ।'

'तेरे जैसे दसको खरीद सके है, समझा ?'

रामनामी भिखारी दुनियाको कोसे जा रहा था। उसने इकन्नी उठाकर मेरे हाथपर पटक दी, मैं चुपचाप भागा ।

एक कह रहा था, 'परदेसी जाण परे हैं, सेठ कूँ जानता नहीं । अरे भई, वह तो सबकूँ घेरके राम णाम कहावे है ।'

मैं काफी दूर चला आया था । मन ग्लानिसे भर जाना चाहिए था कि मैंने एक धार्मिक जीवको भिखारी समझा; किन्तु ग्लानि कुछ बची हो तब न ! मेरा दान स्वयं मेरी विडम्बना करता था । बाँहें झटकारते, कमीज खोलकर हवाको निमन्त्रण देते, दुःस्वप्नको भुलानेके अन्दाजमें सीटियाँ बजाते मैं होटलकी ओर चल पड़ा । होटल पहुँचा तो दरवाजेपर कुर्सी डाले मैनेजर बैठा था । देखते ही बोला, 'विपिन बाबू, जरा सुणजाजी ।'

पास गया तो रोजके खिलाफ उसने कुर्सीसे उठकर मेरा स्वागत किया । मैं उसके चेहरेपर देखता रहा, 'क्या है भई, घबड़ा गये क्या ? दो-चार रोज और सब्र करो ।'

'नहीं जी, यह बात नहीं ।' उसने नम्रतासे कहा, 'बात यह है साब कि होटलमें एक नया बाबू आया है, पैसेका मामला है, यदि आप अपना कमरा···'

'तो तुम समझते हो मैं जाड़ेमें बाहर सोऊँगा । जाने क्यों गुस्सा दबा न सका, तुम अपने पैसे तो नहीं छोड़ दोगे न, फिर यह क्या बदतमीजी कि रोज-रोज कमरा बदलते रहो ।'

'तो आप साब कहीं और···'

'हाँ, हाँ, कर लूँगा कहीं और इन्तजाम' मैं लापरवाहीसे उठकर ऊपर जाने लगा ।

'आपका सामान पारीख लोगोंके पास वाले कमरेमें भेज दिया है ।'

'हरामी' मैं मन-ही-मन बुद्बुदाया, 'सामान हटवाकर चला है शराफत दिखाने।'

सीढ़ियोंपर मैंने चार बार थूँका, दीवारोंपर तालीसे निशान खींच दिया, टूटे पलस्तरोंको कुरेदता-चींथता ऊपर पहुँचा। मेरे कमरेमें एक मजनूँ टाइपके मियाँजी आसन समाये बैठे थे। साथमें तीसेककी एक औरत थी, जो अपने दोनों कानोंको बीसियों बालियोंसे गूँथकर बच्चोंकी कहानी की सियारिनकी तरह दिखाई पड़ती थी, जो घोंघोंके कर्णफूल पहनकर अपनेको जंगलकी रानी डिक्लेयर किये थी। मनमें तो आया कि दोनोंको दो-दो घूँसे जमाकर नीचे ढकेल दूँ; पर उन बेचारोंका दोष क्या था। कमरेमें झाँककर देखा, तो आलमारीपर मेरी तानसेनकी गोलीवाली शीशी वैसे ही पड़ी थी। मैनेजरके बच्चेने सामान तो दूसरे कमरेमें भेज दिया, पर मेरी तानसेनकी शीशी यहीं छोड़ दी। खाना न मिले न सही, पानी न मिले बलासे; किन्तु मुझे तानसेनकी गोली जरूर चाहिए, और अब तो मैंने इसे सिगरेटकी सब्सीच्यूट कर दिया था।

मैं दरवाजेके पास आया—'माफ कीजिएगा साहब, आपके आनेके पहले मैं इसी कमरेका शरणार्थी था'''सो मेरा एक सामान उस आलमारीपर छूट गया है, ले सकता हूँ क्या?'

'खुशीसे, खुशीसे', घोंघारानी ही बोली।

मैंने लपककर शीशी उठायी।

'क्या है इस शीशीमें?' घोंघारानी बड़ी सोशल मालूम होती थी।

'कुनैन' मैंने ओंठ बिदकाकर कहा, 'मलेरियाकी अक्सीर दवा। यहाँ मच्छर बहुत हैं ना, जरूरत पड़े तो बेतकल्लुफ माँग लीजिएगा।'

वह खीं-खीं करके हँस पड़ी, मजनूँ मियाँ भी खिलखिल कर रहे थे। बोले, 'भई वाह, बड़े जिन्दादिल आदमी हो।'

'मजाककी बात थी साहब, बुरा न मानिएगा।'

हँसीकी आवाज सुनकर पारीख-दम्पति ऊपरकी छतसे झाँकने लगे थे। मुझे देखकर विमला भाभी बोलीं, 'अरे विपिन आओ, आओ। चलो अच्छा हुआ, तुम हमारी बगलमें आ गये।'

'बगलमें आया कहाँ भाभी', सीढ़ियाँ फाँदनेसे साँस फूल रही थी। 'भेज दिया गया; पर यह भी अच्छा ही रहा। दोज़खका आखिरी कमरा देते हुए भी यमराजने एक गलती तो कर ही दी। उसे न सूझा कि वहींसे स्वर्गका दरवाजा भी खुलता है।'

दोनों हँस पड़े। विमला भाभीके अधरों पर एक मासूम-सी हँसी नाच उठी, वे किंचित् लजाती हुई बैठी रहीं। सारा वातावरण एक विचित्र प्रकारकी सुगन्धिसे भर उठा। एक ऐसी हँसी जो डाल पर सद्यः खिले फूलकी तरह खुशबूदार और पवित्र।

'आज कहाँ-कहाँका चक्कर लगा आये?' वे अपनी कुर्सीसे उठकर भीतर गयीं और एक प्लेट लाकर मेरे हाथोंमें सौंपते हुए बोलीं, 'तुम्हारा हिस्सा है, हम कबसे तुम्हारा इन्तजार कर रहे थे, अब तो हलुवा ठंडा भी हो गया होगा।'

'अरे भाई सुनो, ऐसे काम नहीं मिलता।' पारीख साहब बोले, 'नौकरी कहीं खोयी है, जो खोजते फिरते हो, वह तो बनानी पड़ती है बनानी...' फिर वे कुछ बोल न सके। जानते थे कि आगे कहना कितना नाजुक है। सहानुभूति एक बात है और असलियतको छिपा कर बातें बनाना ठीक दूसरी। एक दमघोंट खामोशी छा गयी। हँसीकी लहरोंके ऊपर कुहरेका घना जाल। मानवीय शक्ति और आकांक्षामें युद्धका वीभत्स विराम। असमर्थताकी ऐसी गुंजलक, जिसके दबावमें आदमी चाहकर भी कुछ कह नहीं पाता, बदस्तूर देखती आँखें काँचकी तरह निस्तेज और ममत्वहीन हो जाती हैं।

विमला भाभी जैसे इस पूरी स्थितिके ऊपर थीं, मुसकरा कर बोलीं, 'अरे छोड़ो भी, कहो, नीचे किससे उलझ गये थे?'

'एक बड़ी हसीन लड़की आयी है, पिण्ड छुड़ाना मुश्किल हो गया; किसी तरह बच-बचाकर निकल आया।' घोघारानीके क्षणिक इन्टरव्यूकी बात बतायी तो नारी-कंठकी बेलाग हँसीके स्वरोंसे मुर्दनी छायाएँ तार-तार हो गयीं। रातको सोया तो बड़ी देर तक नींद न आयी। अचेतन खामोशीके बदरंग वातावरणमें दबी आत्माओंको नारीके प्रयासहीन वाक्यने कैसे उबार लिया था। रोटीके सवालसे एक प्रौढ़ नारी नावाकिफ नहीं थी; किन्तु हार कर मौनको मंजिल माननेकी वंचनासे वही उबार सकती थी—एक नारी ही।

रातमें उठा। पेशाबखाना नीचे है। अपने पुराने कमरेके दरवाजे पर मैनेजरको खुसुर-फुसुर करते देख आश्चर्य न हुआ। किन्तु वह मुझे देखकर एकदम चौंक उठा। गुस्सेमें कुछ बड़-बड़ाता रहा, फिर मेरे ही साथ सीढ़ियाँ उतरने लगा।

'अब देखिए साब—वह कहने लगा, 'कैसी तबीयतके लोग हैं ये। जोरसे सुनाकर बोला, 'हरामजादी, मेरी चले तो उसकी जीभ खींच लूँ। राजपूत हूँ साब राजपूत, क्या समझा है उस कुतिया ने।'

'बात क्या है?'

'बात' वह मेरे कानोंके पास सट आया, 'वह बेशर्म बुढ़िया कह रही थी, कि मेरे छैल-छबीले मियाँके लिए कुछ इन्तजाम करो···औरत जातसे क्या कहें साब, नहीं तो टाँगें चीर कर रख देता, इसे भी पंजाबड़ोंका होटल समझ लिया है, मेरा मालिक सुन ले तो मुझे जिन्दा लटका दे।'

'वह कौन है उसकी?'

'उसके बापकी रखैल है, चाची कहता है, महीनेमें एक-दो बार जरूर आते हैं।'

मैं क्या कहता चुपचाप बाहर चला गया। सारा होटल जैसे कालिख भरी आगमें धधक रहा था। मैनेजर जाने मुझे क्या समझता है—शायद

बहुत निरीह; क्योंकि मैं पैसेसे खरीदे जिस्मसे प्यार नहीं कर सकता। इसी-लिए मेरी नैतिकता सुरक्षित है, मैं पवित्र हूँ, और ऐसे इन्सानके सामने मैनेजरकी नैतिकता निश्चित ही सुरक्षित रहनी चाहिए...जैसे मैं जानता न होऊँ कि इसके होटलमें क्या-क्या होता है। इसका मालिक जो इसे ऐसे कामोंके लिए जिन्दा लटका सकता है, शराब पीने और शराफतका पर्दा चुस्त रखनेके लिए एक कमरा बिल्कुल रिजर्व रखे है। वह फार्मेसी का एजेंट जो अपनेको पहले नम्बरका डाक्टर बताता है, महीनेमें पन्द्रह दिन यहीं टिका रहता है, और उसके चार बच्चोंकी माँ देहातमें आठ-आठ आँसू रोया करती है। एक बिगड़े दिल कँवर साहब इतना चटक साफा बाँधकर आते हैं, जैसे महफिल लगाने जा रहे हों। बात-बातमें चिल्लाता है, चुप, नहीं हंटरसे खाल खींच लूँगा...यह सब-कुछ तो यहीं होता है।

कुहरेसे ढकी विशाल सड़कें विचित्र प्रकारके सम्मोहन-जालमें उलझी मालूम होतीं। किनारे खड़े ऊँचे-ऊँचे कद्दावर दरख्त किसीके रेशमी आँचलमें मुँह छिपाये ऊँघ रहे थे—चाँद मदहोशीमें ढुलकता जा रहा था, सारा माहौल दूधिया चाँदनीमें सुध-बुध खो चुका था—मेरी आँखें अजीब वेदनासे जल रही थीं, मनके अन्दर आसमानकी तरह रिक्त उदासी भर गयी थी। कोई एक जलन, एक पीड़ा जिसका अर्थ मैं स्वयं नहीं जानता। आज पहली बार अपना अकेलापन इतना पुरदर्द मालूम हुआ, केवल मैं ही जगा था, एकाकी मैं। सड़ककी पटरियों पर गूदड़को सिर-हाने रख कर भिखारी भी सुखकी नींद सो रहे थे। इसीमें लड़केका गला काट कर पैसे कमाने वाला मदारी भी होगा, सुखकी नींदमें।

लौट रहा था, तो फिर जाने क्यों अपने पुराने कमरेके पास ठिठक गया।

'पन्द्रह रुपये ही तो कह रहा था, दे क्यों न दिया,' बोबारानी बोल रही थी।

'पन्द्रह रुपये, उस कलूटीके लिए? जाने भी दो तुम क्या बुरी हो।'

कानोंके पर्दे तीखे दर्दसे भर गये, आसमानकी असीम गहराईमें दुबका चाँद कितना पीला और वीभत्स नजर आ रहा था, तारे कितने डबडबाये और निस्तेज थे।

सुबह पारीख-दम्पति सामान बाँधे जानेको तैयार थे। विमला भाभी मुझे जगा रही थीं : 'उठो भी भाई, फिर रात होगी।'

पहुँचाने सड़क पर आया, तो जाने कैसे इकन्नी याद आ गयी। पान दिया तो विमला भाभी मुसकरा कर बोलीं, 'अपनी शादीमें बुलाना विप्पी, दिल्लीके पते पर अपनी भाभीको पत्र लिखना न भूलना। और सुनो, मेरी एक बात मानोगे? देखो इस होटलको छोड़ दो, छोड़ दोगे न?

मैंने गरदन हिलाकर हामी भरी। आँखोंके कोरक चमक उठे। विमला भाभीको नमस्कार किया, तो कुछ बोल न सका। पारीखसे हाथ मिलाया, 'याद रखना भाई।' रिक्शा चला गया।

मैं उन्हें देखता रहा। चलो, अच्छा हुआ। उनका चला जाना ही ठीक था। उनकी छोटी-सी गृहस्थीको यह विषैली वायु न छुए, उनकी घरकी दीवारें उनके हाथोंमें स्नेहका लेप करें···मेरी जिन्दगीकी क्या चिन्ता। वह तो इस बे-दीवार वाले घरकी बन्धक है, एक ऐसी जिन्दगी जिसके गम और खुशीमें कोई रोने-हँसने वाला नहीं। स्नेहहीन बातीको जलानेका निष्फल प्रयत्न, ताकि कोई इसे धुआँ न कह दे।

रेती

क्वारका महीना था। गाँवकी गलियोंमें कीचड़ सूख चुके थे। सिवान बाजरेके पौधोंसे ढँका था, जिनके बीच-बीचमें काँसके श्वेत फूल डोल रहे थे। हरी चादरमें लिपटे हुए कगारोंके बीच गंगाकी दूधिया धार सूरजके गेरुए प्रकाशमें अबीरी हो गई थी। चारों ओर उल्लास था। रुईके गालेकी तरह हलके श्वेत बादल हंसोंकी पाँतकी तरह उड़े चले जा रहे थे।

सामनेके घाटपर बड़ी भीड़ थी। श्वेतकेशी बूढ़ियों, पीली साड़ियोंमें सिकुड़ी बहुओं और रंगीन फूलोंसे बाल सजाये चञ्चल लड़कियोंका रेला लगा था। सूरजके गोलेने जैसे ही पानीकी सतहको छुआ, औरतोंकी जमात पानीमें कूद पड़ी। आज जिउतिया है, मातृनवमी, पुत्रवती नारीका महत्त्वपूर्ण पर्व।

'ऐ चील! किनारे खड़ी एक बूढ़ी औरत आकाशमें मँड़राते पक्षीकी ओर हाथ उठाकर चिल्ला उठी—'जाकर राजा रामचन्द्रसे कह देना कि रामू की माँने आज खर जिउतियाका व्रत किया था।'

आकाशमें पक्षीका चक्कर जारी रहा। बूढ़ी औरत हर लड़केका नाम ले-लेकर उसकी माँके व्रतकी बात बताती रही। पक्षी जैसे चक्कर दे-देकर उन नामोंको घोख रहा था, उसे राजा रामचन्द्रके सामने पूरी तालिका जो पेश करनी थी।

पुत्रवती नारियोंका हृदय नाच रहा था। 'अमुककी माँ' के सम्बोधनसे उनका रोआँ-रोआँ गर्व और अभिमानसे पुलकित हो जाता था।

रातको बड़ी देरतक मैं इस प्रसङ्गपर सोचता रहा। दिनभर भयङ्कर

गर्मी पड़ी थी। शामको जैसे हवा भी सो गई। छत अबतक तोंक रही थी। और मैं लेटे-लेटे 'जिउतिया' व्रतका इतिहास ढूँढ़ रहा था। नारीके लिए पुत्रवती होना कितने गौरवकी बात है, फिर उसका 'जीवित पुत्रिका' होना तो और भी अधिक।

मैं मन मारकर सोनेका उपक्रम कर रहा था कि एक मर्मभेदी चीत्कार सुनाई पड़ी।

मेरे पड़ोसमें सुमेर मल्लाहका घर है। यह गंगा पारके कोई बीस कोसके धीवरोंका चौधरी है। ऊँचा डीलडौल, काला, भड़कीला रंग। जब किसी पंचायतमें जाना होता है, तो सहेजकर रखी हुई मलमलकी पगड़ी निकालता है, मिरजईके बन्द कसकर, जब वह अपने टट्टूपर बैठकर चलता है, तो लगता है, साक्षात् धर्मराज उतर आये। सुना जाता है, वह बड़ा न्यायी है, हर मामलेमें दूधका दूध और पानीका पानी कर देता है। पर इस चौधुरीको खुद अपने घरकी नहीं सूझती, रोज उपद्रव होता है, पर इसके कानपर जूँ नहीं रेंगती।

मैं मन-ही-मन खीझ रहा था कि भाभी आयीं।

'क्यों, बाबू, नींद नहीं आती ?'

'आये भी कैसे ? पड़ोसमें जो रोज बाजा बजता रहता है।'

भाभी मुसकराईं। उनके अधरोंपर उभरनेवाली रेखाको हम हँसी ही तो कहेंगे, पर उस हँसीमें कितनी पीड़ा, हमदर्दी और मुझ जैसे अनभिज्ञके लिए तीखा व्यंग्य था। मैं आश्चर्यसे देखता ही रह गया।

'तुम्हारी पुरुष जाति बड़ी दयालु होती है बाबू ! शादी-ब्याहमें औरतको उठा लाते वक्त बाजा बजाते हैं, घरपर आये दिन बजाते रहते हैं और वह क्रम तबतक जारी रहता है, जबतक गाजे-बाजेके साथ औरतकी लाश न उठ जाय।' भाभी कहकर चुप हो गईं। मैं चुपचाप उनकी ओर देखता रहा।

'यह कौन रोता है, भाभी ?'

'सुमेर चौधरीकी पतोह !'

'गंगा बहू ?'

'हूँ ।'

भाभी चुप थीं । मैं गंगा बहूके बारेमें सोचने लगा । आजसे कोई पाँच-छ: साल पहले गंगा बहू ब्याह करके आयी थी । गाँव भरमें उसके रूपकी चर्चा थी । लोग उसकी काली पंजी, छींटके सलूके, लम्बी फूलदार चोटी और लाल चड्डीकी बात करते थे । बूढ़ी औरतें गंगा बहूसे नाक सिकोड़ती थीं, क्योंकि वह गुलाबी रंगसे अपनी एड़ी और होंठ रँगे रहती थी । छोटे लड़के और लड़कियाँ उसे घेरे रहते, क्योंकि वह उनकी हथेलियोंपर रंगसे फूल काढ़ती और माथेपर रंगका तिलक लगाती थी ।

'क्या सोच रहे हो, लाला ?'—भाभी हँसकर बोलीं । 'पर-नारीकी लुनाईका ध्यान करना पाप है ।' फिर वह चिकोटी काटकर कहने लगीं—'वही काली पंजी, लाल चड्डी आदिकी पुरानी बातें न ?'

'तुम जादू भी जानती हो, मायारानी ?'

'हाँ, लाला, और उसी जादूके जोरसे कहती हूँ, कि तुम आँखें मूँदकर जो रूप-रंग देख रहे हो, वह अब राख हो गया है । गंगा बहूको पाससे देखो, तो रुलाई आ जाय ! चेहरे-मोहरेको वह अभागी कहाँ ले जाय, पर आत्मा जलती है, तो देह पर आँच आती ही है ।'

'भाभी !'

'छै सालके समयको लोग आधा जुग कहते हैं, सो आधा जुग बीत गया और गंगा बहूकी कोखमें चिरईका पूत तक न जन्मा । फिर ऐसी कुलच्छन औरतको कोई आदर-सत्कार कैसे दे ?'

'भला लड़का न होनेमें उस बेचारीका क्या दोष ?'

'ऐसा लोग समझते तो काहेको गंगा-जैसी औरतों पर जुल्म टूटता ।

कितनी ही जीती-जागती औरतें इस तरह तिरस्कृत हो काहेको जिन्दगीसे बेजार होतीं !'

भाभी बड़ी गम्भीरतासे मेरे चेहरेकी ओर देखती रहीं और बोलीं—पिछले कार्तिककी बात है सुमेर चौधुरी पारके किसी गाँवसे पंचायत करके आ रहा था। नदीके इस पार उसका लड़का टट्टू लेकर गया था। उस दिन पानी बरसा और जब चौधुरी टट्टू पर चढ़कर घर चला, तो अँधेरा हो आया। बड़े पीपलके पच्छिम टट्टूका पैर फिसल गया और वह धड़ामसे गिर गया। जानवरके पैर और मुँहमें चोट आयी और सुमेर चौधुरीकी एक बाँहमें काफी चोट लगी।

'उस दिन सास-बहूमें किसी बातका झगड़ा हो गया था। घायल चौधुरी घर पहुँचा, तो उसकी औरत दवा-दारूकी जगह सोटा लेकर दौड़ी और उसने गंगा-बहूको बुरी तरह पीटना शुरू कर दिया। जानते हो क्यों? क्योंकि यह सब गंगा बहूके पापसे ही हुआ था। उसीके पापसे चौधुरी उस दिन पंचायत करने गया, उसीके पापसे उस दिन पानी बरसा और उसीके पापसे बेचारे टट्टू के पैर फिसले।

मैं तुम्हें एक छोटी-सी घटना और बता रही हूँ। नदीकी ओर तो तुम गये ही होगे। पिछले साल भादोंमें आये होते तो देखते। गङ्गाके किनारेसे गाँवके गोंइड़े तक ज्वार-बाजरे खड़े थे। बिल्कुल तोतेकी तरह हरी-हरी पत्तियाँ और एकतार छड़की तरह सीधे खड़े पौधे। देखते ही मन खिल जाता था। सुना, ऐसी फसल पिछले कई सालोंमें नहीं आयी थी भादों बीतते-बीतते अपार जलवृष्टि हुई। गङ्गाजी उमड़ चलीं। किनारे तोड़कर लहरें आगे बढ़ीं और देखते-ही-देखते पूरा सिवान गंगा मैयाके पेटमें चला गया। फसलोंकी पत्तियाँ पीली हो गयीं, सिवान काला पड़ गया। सुमेर चौधुरीका एक खेत ठीक नदीके मुँह पर था, सो पानीका रेला सबसे पहले उसी खेतमें आया।

दोपहरको गंगा बहूसे उसकी सासने बालोंमें तेल डालनेको कहा। बर्तन-बासनमें उसे देर हो गई। घर आकर चौधुरीने ज्योंही फसलकी बर्बादीका हाल कहा, गंगा बहू पर बेभावकी मार पड़ी। सास उसकी चोटी खींच-खींचकर पीट रही थी और वह धर्मराज सामने खड़ा तमाशा देख रहा था।

अन्तमें उसके पेटपर एक जोरका लात मारकर उसकी सास बोली, 'आग लगे उस कोखमें ! सत्यानासी अपने तो जायेगी ही, पूरे घरको चबा जायेगी !'

गाँव भरमें बाढ़की वजहसे उदासी थी। फसल जानेका सबको गम था। ऐसेमें गंगा बहूकी सासकी बातें सारे गाँवमें फैल गयीं। सभी इस दैवी प्रकोपका कारण इस असहाय औरतको ही समझने लगे। उसका गाँवमें घूमना-फिरना तक मुहाल हो गया। दिन-रात अन्धेरे कोनेमें मुँह गाड़े बैठी रहती और भगवान्‌से अपनी मृत्युकी प्रार्थना करती।

'भाभी, क्या उसका पति अपनी माँको कुछ नहीं कहता ?'

क्या कहे। उसे अपनी माँकी बातों पर विश्वास न हो, तब तो कुछ कहे। बाबू, संसारमें ऐसा कौन है, जिसे बिमारी-तिमारी नहीं होती। गाँव वाले अपनी गन्दगीको तो कभी देखते ही नहीं, बस भूत-पिचास-जादू टोना ! उसका पति इससे बचा थोड़े है। उसे भी रोग-सोग होता ही है और जब उसके रोगोंका निदान करके उसकी माँ बहूको कारण बनाकर पीटने लगे तो शुभ-चिन्तक माँके बीमार बेटेकी नजरोंमें बहू राक्षसी बन जाय, इसमें क्या आश्चर्य ? सुना पिछली बार जब वह मलेरियासे बीमार था, एक रात नींदमें चौंककर वह चिल्लाने लगा, 'बचाओ, बचाओ ! यह राक्षसी मुझे खा जायगी !'

पतिकी बातें सुनकर दुस्सह व्यथासे बेचारी गंगा बहूकी गर्दन झुक गई। वह फूट-फूटकर रोना चाहती, पर सिसक भी न सकी। गंगा बहू

की लुनाईसे आकृष्ट होकर वह कभी-कभी प्रेम भी व्यक्त करता है, पर वैसे ही जैसे स्वप्नमें कोई चुड़ैल या राक्षसीसे प्रेम करे और जब यह जान ले कि यह राक्षसी है, तो भयके मारे चीख उठे।

बच्चेके लिए उसने क्या नहीं किया। टोने-टोटके लेकर व्रत-नेम और कितनी ही जड़ी-बूटी वह आँख मूँद कर पीती रही। किसीने कह दिया कि षष्ठीपूजनको रात भर गंगाजीमें खड़ा रहकर प्रातः सूरजका मुँह देखकर बाहर निकलनेसे अवश्य पुत्र होता है, तो गंगा बहू रात भर ठार पानीमें खड़ी रही। कितनी बार तो वह मरनेसे बची। निर्जला एकादशी, प्रदोष और और भी न जाने कितने पर्व उसके शरीरको सुखाते रहते हैं। इन तमाम पर्वोंमें उसकी आशा उसे राहत देती थी, पर अब तो वह भी न रही। वह अब इस जिन्दगीको मौतसे बेहतर समझती है। जरा तुम्हीं सोचो, आखिर उसका अपराध ही क्या है? लड़का न होनेमें उसका पति भी तो कारण हो सकता है। पर इसपर कौन सोचता है। औरतें उससे दूर भागती हैं। लोग-बाग उसके पाससे बच्चोंको खींच लेते हैं। कोई बच्चा उसकी अंगारे-सी दहकती गोदकी आँच कैसे सह सकता है।

भाभीकी आँखें छलछला आयीं। मैं चुपचाप उनके चेहरे पर अंकित रेखाओंको देखता रहा।

आजकल वह सबेरे-सबेरे एक गीत गाती है, कभी सुनो, तो रुलाई आ जाय।'—भाभी कुछ और कहने जा रही थीं कि तभी नीचेसे भैयाने पुकारा और वह एक गहरी साँस खींचकर उठ गयीं।

मैं बड़ी देर तक चुपचाप आसमानकी ओर ताकता रहा। शून्य रहस्यभरे अन्धकारमें न जाने कितने प्रश्न थे, जिनका मेरे पास कोई उत्तर न था। भाभीकी बातोंकी जालमें उलझकर मैं निश्चेष्ट, खामोश सो गया।

आश्विनकी भोर अपनी स्निग्धतामें मुस्करा पड़ी। बिस्तरे पर सूरजकी

रक्तोज्ज्वल किरणें पारिजातके पुष्पकी तरह बिखर रही थीं। मेरी छतके नीचे किसीके गानेकी आवाज गूँज रही थी। स्वरमें वेदनाका तीव्र कम्पन था। मैं चुपचाप किनारे आकर खड़ा हो गया। गंगा बहू गा रही थी :

माँ!—बाँझ बहू अपनी साससे कह रही है : मैं घरके एक कोनेमें दुबकी पड़ी रहूँगी। मैं तुम्हारे पुत्रका मुँह देखकर जीती रहूँगी। मुझे घरमें रहने दो।

ना, ना!—सास कहने लगी : मेरी दूसरी बहुएँ भी निपूती हो जायेंगी, मेरी धरती बंजर हो जायगी। जा, जा तू चली जा!

बहू चल पड़ी। जंगलमें एक बाघिनको देखकर रुक गई। बोली—बाघिन, तू ही मुझे खा ले, मैं अब जीना नहीं चाहती।

ना, ना!—बाघिन बोली : मैं तुम्हें खाऊँगी, तो मैं भी बाँझ हो जाऊँगी! जा, जा तू चली जा!

अन्तमें बहू अपने मायके गई। माँसे बोली : माँ! मैं तेरी ही जनी हूँ, तू ही मुझे शरण दे!

माँकी आँखें भर आयीं : बेटी, मैं कैसे जगह दूँ? मेरी बहुएँ निपूती हो जायेंगी, मेरी धरती बंजर हो जायँगी। जा, जा, लौट जा!

हताश बहू गंगा मैयाके पास गयी। उन्होंने उसकी प्रार्थना सुन ली और उसे सदाके लिए अपनी गोदमें सुला लिया।

गंगा बहूकी आँखोंसे झर-झर आँसू गिर रहे होंगे और वह उस धरतीका अभिषेक कर रही होगी, जो उसकी छायामात्रसे ही बंजर हो जाती।

एक साल बीत गये। गर्मियोंकी छुट्टीमें मैं फिर गाँव आया। मैं अब भी उसी छत पर सोता किन्तु कभी रुलाईका स्वर सुनाई न पड़ता। तो क्या गंगा बहूको कुछ हो गया!

दूसरे दिन मैं नदीके किनारे घूमता-घूमता दूर निकल आया। सामने नदीकी धारमें विशाल रेती पड़ी थी। इस पर घास-फूसकी झोंपड़ियाँ, और दूर तक फैली हुई तरबूजेकी लतरें छाई थीं। इस साल फसल अच्छी थी, तरबूज भी खूब फल रहे थे। मैं चुपचाप उतरकर रेती पर चलने लगा। झोंपड़ीमें मुझे गंगा बहू दिखाई पड़ी। मैं झोंपड़ीके दरवाजे पर खड़ा हो गया। भीतर गंगा बहू बैठी थी। देखते ही वह उठकर बाहर आई।

'क्यों बाबू' उसने मुसकराते हुए पूछा, 'खरबूजे खाओगे।'

मैंने स्वीकृतिमें सिर हिला दिया तो वह प्रसन्न चित्त खेतकी ओर जानेको लपकी। सामनेसे उसकी सास आ रही थी।

'कहाँ जाओगी!' सासके स्वरोंमें अपरिचित ममता थी, 'तुम बैठो न बहू, देखती नहीं धूप, तुरन्त सरमें दर्द होने लगता है, जाओ भीतर बैठो, मैं खरबूजे तोड़ लाती हूँ'

मैं आश्चर्यसे गंगा बहूकी ओर देखने लगा। उसने भी जैसे मेरे मनके भाव जान लिये और गर्दन झुका ली।

'गंगा भाभी' मैंने धीरेसे कहा।

गंगा भाभीने गर्दन ऊपर की। तिर्यक् आँखोंमें चमक थी। रूपके सागरमें चलवे मचली-सी चमकनेवाली आँखें गर्भालससे थकी मालूम होतीं थीं। चेहरे पर पीलापन था; पर वात्सल्यकी दमक थी। वह मुस्कराकर नीचे देखने लगी। उसकी कोखमें एक प्राणी उतरने वाला था। बंजरमें अंकुर उगे थे। उनके स्वागतमें मधुव्यापी हवाएँ चलने लगीं। जन्मकी राक्षसी आज देवी थी प्रसूता, सृष्टिकी अधिष्ठात्री, क्योंकि उसकी गोदमें मानव उतर रहा था। सारा कलंक धुल गया, माँगका सिन्दूर चमक रहा था।

'रेती तो बहुत जलती होगी, गंगा भाभी' मैंने पूछा।

'हाँ बाबू, पर अब देर नहीं है। दशहरेसे पानी बढ़ने लगा है। जल्दी ही यह डूब जायेगी, जलना तो इसका धर्म है न। भला जलती नहीं तो इसमें इतने मीठे फल कैसे लगते!'

मैंने देखा गंगा भाभीके चेहरे पर विजयका उल्लास है, जो नियतिके क्रूर अभिशाप पर चाँदनीकी तरह मुसकरा रहा है।